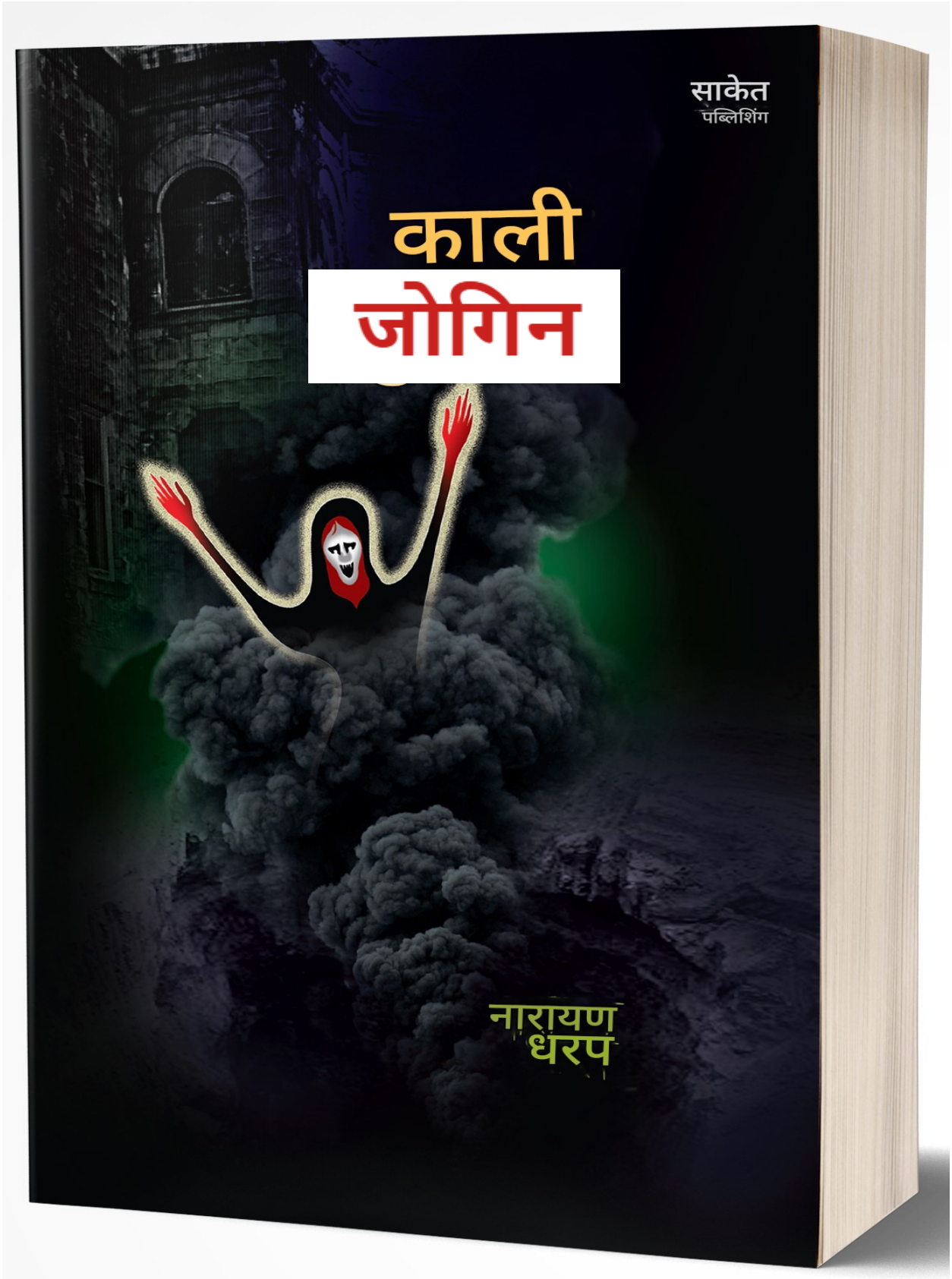
साकेत
पब्लिशिंग
काली
जोगिन
नारायण
धरप

काली जोगिन

नारायण धरप

काली जोगिन

उपन्यास

नारायण धरप

प्रकाशन संख्या - 1718

प्रकाशक

साकेत बाबा भंड,

साकेत पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड,

115, मी. गांधीनगर, स्टेशन रोड,

औरंगाबाद - 431 005,

फ़ोन- (0240)2332692/95.

www.saketpublication.com

info@saketpublication.com

पुणे कार्यालय

साकेत पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड,

कार्यालय संख्या 02, 'ए' विंग, पहली मंजिल,

धनलक्ष्मी कॉम्प्लेक्स, 373 शनिवार पेठ,

गर्ल्स स्कूल के सामने, कग्गल गली, पुणे -411 030

फ़ोन- (020) 24436692

प्रस्तावना

हालांकि नारायण धरप का नाम आज की पीढ़ी के लिए नया है, लेकिन यह कभी न भूलने योग्य है कि एक समय वे अपनी रहस्यमयी लेखन शैली से विश्व पर राज करते थे। उन्होंने पिछली शताब्दी के साठ के दशक में लिखना शुरू किया और तब से लेकर अंत तक लगातार लिखते रहे। मराठी साहित्य में रहस्य कथाओं और उपन्यासों के क्षेत्र को समृद्ध करने वाले कुछ स्वतंत्र लेखकों में नारायण धरप का स्थान सर्वोपरि है।

यह भी उल्लेखनीय है कि नारायण धरप उन गिने-चुने लेखकों में से एक हैं जिन्होंने न केवल पाठक को अपनी रचनाओं में बांधे रखा, बल्कि उन्हें कहानी के माहौल का हिस्सा भी बना दिया और कथानक में आगे क्या होगा, इस जिज्ञासा को बरकरार रखा। यही कारण है कि जब टेलीविजन और अन्य मीडिया इतने लोकप्रिय नहीं थे, तब आम पाठक उनकी रचनाओं का बेसब्री से इंतजार करते थे। पाठक पुस्तकालयों, विशेषकर पुस्तकालयों में, उनकी पुस्तकें प्राप्त करने के लिए कतारों में खड़े होते थे, जो उनकी लोकप्रियता का प्रमाण है।

मनुष्य में हमेशा से ही रहस्यों को जानने की स्वाभाविक इच्छा होती है। यह संतुष्टि पढ़ने के माध्यम से ही प्राप्त होती है, जो किसी अन्य माध्यम से नहीं मिल सकती। इसीलिए पढ़ने के प्रति आकर्षित नई पीढ़ी रहस्यमयी कहानियों और उपन्यासों की प्रतीक्षा कर रही है। पाठकों की इस पढ़ने की भूख को शांत करने के लिए हमने नारायण धरप के रहस्यमयी साहित्य को पुनः प्रकाशित करने का निर्णय लिया है।

नारायण धरप के रहस्य साहित्य को एक अच्छे और गुणवत्तापूर्ण प्रारूप में प्रकाशित करके, पाठक इसका उचित और संतोषजनक ढंग से आनंद ले सकेंगे। मुझे पूरा विश्वास है कि पाठक इस प्रामाणिक मरांगी रहस्य साहित्य का नए प्रारूप में स्वागत करेंगे।

- प्रकाशक

1

रिक्शा के दरवाजे पर आधा मिनट इंतजार करने के बाद भी अच्युत हिलने-डुलने का नाम नहीं ले रहा था। आखिरकार नलिनी बाहर निकली। उसने किसी तरह भारी ट्रंक को बाहर खींचा और पैसे देने के लिए अपना बटुआ निकाला। पैसे निकालते हुए उसने अच्युत से कहा,

"अरे! अब उतरना मत? हम घर आ गए हैं।"

रिक्शा चालक ने पैसे लेते हुए नलिनी और अच्युत को हैरानी से देखा। नलिनी की हिम्मत नहीं हुई कि वह उसकी ओर देखे। पूरे सफर के दौरान वह खुद से यही कहती रही, अब सब खत्म हो गया; यह आखिरी शर्मनाक घटना थी; अब वह घर पहुँच जाएगी और यह सफर हमेशा के लिए समाप्त हो जाएगा... लेकिन अभी यह खत्म नहीं हुआ था! शर्मिंदगी उसका पीछा तब तक करती रहेगी जब तक वह घर की सीढ़ियाँ नहीं चढ़ जाती!

अच्युत उसे खाली निगाहों से देख रहा था। रिक्शा चालक अधीर था। उसने ज़ोर से आवाज़ की और मीटर घुमा दिया। उसने गाड़ी के हैंडल पर ज़रूरत से ज़्यादा ज़ोर से मारा। क्या उन्हें एहसास नहीं है कि उनकी स्थिति थोड़ी नाज़ुक है? क्या उन्हें ज़रा भी हमदर्दी नहीं है? नलिनी के मन में गुस्से का ख्याल आया। उसे भी अच्युत पर गुस्सा आ रहा था। उसका मन कर रहा था कि उसका हाथ पकड़कर उसे ज़ोर से बाहर खींच ले... लेकिन वह गुस्सा भी पल भर में गायब हो गया। गुस्सा करने का क्या फायदा? वह और भी खूबसूरत होती...

सौभाग्य से, अच्युत रिक्शा से उतर गया। रिक्शा चालक कुछ बुदबुदाते हुए अचानक मोड़ लिया और रिक्शा 'फार्रर्र' की आवाज़ के साथ आगे बढ़ गया। वे दोनों सड़क पर अकेले रह गए।

“मैं ट्रंक को इतना नहीं उठा सकती,” नलिनी ने कहा। उसकी निगाहें आसपास की खिड़कियों पर टिकी थीं। वह देख रही थी कि कहीं कोई उसे देख तो नहीं रहा। अगर कोई खिड़की खुल जाती या पर्दा हट जाता, तो उसका दिल चकनाचूर हो जाता। उसका दिल अभी इसके लिए तैयार नहीं था...

अच्युत वहीं खड़ा था। कौन जाने उसने नलिनी की बातें सुनीं या नहीं। नलिनी ने उसका कंधा हल्के से हिलाते हुए कहा।

"अरे, तुम ही ट्रंक क्यों नहीं खोल लेते? मैं दरवाजा खोल देता हूँ - चलो।"

अब ऐसा लग रहा था कि उसे होश आ गया है। उसकी निगाहें चारों ओर घूमीं और फिर घर के दरवाजे पर टिक गईं। उसकी आँखों में पहचान के भाव दिखाई दिए।

"हम कहाँ जा रहे हैं?" उसने धीरे से कहा।

"हम कहीं गए नहीं थे, हम बस वैंस के घर वापस चले गए थे-" उसकी आवाज अनजाने में ही कठोर हो गई थी।

"पहले उस ट्रंक को उठाओ।"

अच्युत ने आज्ञाकारी होकर संदूक उठाया। वह उसके पीछे सीढ़ियों से ऊपर गया। नलिनी ने दरवाजा खोला और अंदर आई। दरवाजे और खिड़कियाँ बंद थीं। दोपहर की धूप से घर का एक पूरा हिस्सा गर्म हो गया था। अंदर की हवा घुटन भरी थी। भट्टी जैसी गर्मी थी। हर तरफ धूल ही धूल थी। शारीरिक और मानसिक परिश्रम से उसका सिर दर्द कर रहा था। काश, उसे एक कप कड़क चाय मिल जाती...

लेकिन घर में दूध-पानी नहीं होगा। उसने अपने होंठ दबाए और खुद को रोका। छत का दरवाजा खुला। गर्म हवा का एक झोंका अंदर आया। फिर खिड़कियाँ खुलीं। अच्युत अंदर आ गया था; लेकिन वह दरवाजे के अंदर एक संदूक लिए खड़ा था। उसे देखते ही उसका मन हुआ कि वह जोर से चीख पड़े... उसने खुद को रोका।

“ट्रंक वहीं रख दो। जब तक मैं पलंग साफ करती हूँ, अपने कपड़े उतार दो। फिर लेट जाओ। मैं देखती हूँ कि क्या मुझे चाय मिल सकती है...” उसे पानी और दूध लेने के लिए दो पड़ोसी दरवाजों पर दस्तक देनी पड़ी। पानी गुनगुना था, दूध गायब था।

"अग्बाई! नलिनीबाई! आप कब आईं? अच्युतराव ठीक है ना?" अजनबियों के अजीब सवाल। नलिनी को जवाब की ज़रा भी परवाह नहीं थी। चेहरे पर मुस्कान लिए नलिनी ने कहा, "हम्म, हम्म।"

अच्युत पलंग पर सो रहा था , उसने मुश्किल से ही कपड़े पहने थे। अच्युत में उससे बहस करने की हिम्मत नहीं थी। उसने चूल्हा जलाया और दूध, पानी, चीनी और चाय का सारा मिश्रण उस पर रख दिया। उसने थोड़ा सा गर्म पानी लेकर चेहरा धोया, जब तक कि वह उबलने न लगा। वह कुमकुम लगाने के लिए दर्पण के सामने खड़ी हुई, लेकिन दर्पण धूल से ढका हुआ था और उसकी आँखों में जलन भी होने लगी थी। कांपते हाथों से उसने चुटकी भर कुमकुम लगाया।

चाय उबल रही थी। छानने के बाद उसका रंग कुछ खास आकर्षक नहीं लग रहा था। लेकिन बिना इधर-उधर देखे, उसने दो कप भर लिए। उसने उनमें से एक कप अच्युत के तकिए के पास मेज पर रख दिया। अब पास आते हुए उसने कहा,

"मैंने चाय तैयार कर ली है - ये लो।" उसने चाय के साथ दो एस्पिरिन लीं और फिर एकदम शांत बैठी रही, उसकी पीठ दीवार से लगी हुई थी और उसकी आँखें बंद थीं।

तीन हफ्ते पहले, वह बड़ी उम्मीद के साथ वैंस परिवार के पास गई थी! ताज़ी हवा, बेहतर आहार, अच्छे डॉक्टरों से इलाज, आराम और यह विश्वास कि अच्युत ठीक हो जाएगा - उसने लोगों के भरोसे पर अपने दिल में उम्मीद का एक मजबूत किला बना लिया था।

इतने सारे दयालु लोगों द्वारा उसकी सहायता करने के बाद उसका साहस काफी हद तक लौट आया था।

उसे पत्र लिखने का समय मिल गया था - अच्युत की बहन और उसकी मेज़बान दोनों आ चुके थे। उन्हें दरवाज़े पर देखकर नलिनी रोने लगी। अच्युत के व्यवहार ने उसके मन को उलझन में डाल दिया था - फिर भी, उसके मन के एक कोने में वैंस और उसकी मेज़बान के साफ-सुथरे सामान, कद-काठी और साफ-सुथरे कपड़ों की तुलना अपने घर की गंदगी और कचरे से हो रही थी। वह पूरी तरह से असमंजस में थी। (अगर वैंस तब आया होता जब उसने उसे कई बार बुलाया था, तो वह उसका मध्यमवर्गीय, लेकिन खुशहाल और साफ-सुथरा जीवन देख पाता; ठीक इसी क्षण उसके मन में एक अनचाहा विचार आया-)

"ओह! ओह! ओह!" वंसा ने कहा - "तुम क्या कर रहे हो? हम आ गए हैं ना! चुप रहो! अची कहाँ है?"

"वे अंदर वाले कमरे में सो रहे हैं-

"इस समय?"

"वे हमेशा लेटे रहते हैं," नलिली ने धीरे से कहा।

तभी शंकरराव एक और थैला लेकर अंदर आए। उन्हें देखकर नलिनी को सचमुच हिम्मत आ गई।

"हूँ! अच्युतराव, तुम क्या कह रहे हो! तुम कहाँ हो!"

जैसे ही उन्हें एहसास हुआ कि वे अंदर आ गए हैं, उन्होंने अपने बैग वहीं छोड़ दिए और सीधे अंदर चले गए। अंदर आते-आते वे अच्युत के बिस्तर के पास एक तह कुर्सी भी खींच चुके थे। दोनों दरवाजे पर रुक गए।

उनकी तमाम बातों के बावजूद, अच्युत को इस बात का ज़रा भी अंदाज़ा नहीं था कि घर में कोई अजनबी आया था। वह पिछले चार दिनों की तरह ही बिस्तर पर लेटा हुआ था और ऊपर देख रहा था। उसका चेहरा भावहीन था, उसकी आँखें असामान्य रूप से बेजान थीं।

"अह अच्युत!" शंकरराव ने जोर से कहा। "इधर देखो!"

अच्युत की पलकें भी नहीं झपकीं। शंकरवानी आगे बढ़ी और उसने अच्युत के कंधे को हल्के से हिलाया।

"अच्युत! अच्युत! देखो, हम आये हैं, देखो चाची!"

"यहाँ देखो!"
अच्युत का सिर आखिरकार उनकी तरफ घूमा। आम तौर पर वह शंकरराव के प्रति बहुत विनम्र रहता था; लेकिन अब वह बस उन्हें घूर रहा था। उसकी आँखें लाल और उत्तेजित थीं, लेकिन अब पूरी तरह शांत नहीं थीं। लोगों की यादें उसके भीतर कहीं गहरे में जागने के लिए संघर्ष कर रही थीं। लेकिन उसके लिए ऐसा करना कितना मुश्किल था!
"क्या तुम मुझे पहचानते हो? उठो!" शकनराव ने कहा।
अच्युत धीरे-धीरे उठ बैठा।
नलिनी और ताई अंदर के कमरे में गईं। वह रसोईघर था। नलिनी ने कप में चाय नापना शुरू किया। ताई दीवार से टेक लगाकर वहीं बैठ गईं। चूल्हा जलते ही नलिनी भी बैठ गईं।
"बहन, बताओ क्या हुआ! पत्र बहुत मार्मिक था-"
"मैंने पत्र में जो लिखा है, बस उतना ही मैं कह सकता हूँ - एक शाम मैं ऑफिस से वापस आया और बिस्तर पर लेट गया - वहीं से सब कुछ शुरू हुआ।"
उस पल से उसका जीवन दो हिस्सों में बँट गया। एक हिस्सा उससे पहले का था, खुश, संतुष्ट और आशा से भरा, और दूसरा उसके बाद का - उलझन, दुख, निराशा से भरा, मानो कोई बुरा सपना हो। यह सोचना भी नामुमकिन था कि अगर उसने कुछ किया होता, तो इस घटना को टाला जा सकता था - क्योंकि कुछ भी किया ही नहीं जा सकता था। घटना कहीं दूर, उसकी नज़रों से ओझल, शुरू हुई थी। उसने उस चरम सीमा को महसूस कर लिया था...
अच्युत अपने कपड़ों के साथ बिस्तर पर लेटा हुआ था। आज वह थका हुआ होगा, जैसा कि वह अक्सर घर आकर बहुत थका हुआ लगता था; उसने सोचा था कि वह कुछ ही मिनटों में अपने रोज़मर्रा के कामों में लग जाएगा। लेकिन पाँच मिनट बीत गए, दस मिनट - जैसे ही उसे उसकी कोई हलचल सुनाई नहीं दी, वह बाहर आ गई।
"क्यों? क्या तुम लेटे हुए हो?" उसने उसके बगल में बैठते हुए कहा।
"चाय बन गई है - अंदर आइए?"
उसने कुछ नहीं कहा, वह हिला तक नहीं। वह आगे बढ़ी और उसके चेहरे की ओर देखा, लेकिन उसकी भावहीन निगाहें देखते ही उसका दिल बैठ गया।
"अरे!" उसने उसे हिलाते हुए कहा, "तुम ऐसे क्यों लेटे हो? क्या तुम्हें बुखार है?" उसने उसके हाथों, माथे और गर्दन को छुआ। लेकिन उसका शरीर बहुत ठंडा था। एक पल के लिए, उसे समझ नहीं आया कि क्या करे। उसे थोड़ा और ज़ोर से हिलाते हुए उसने कहा,

"अरे! क्या तुम मेरी बात सुन रहे हो? चलो चाय पीते हैं-" अच्युत उसकी हैरानी देखकर पूरी तरह से चौंक गया। एक पल के लिए उसने अपने पेट को कसकर पकड़ लिया और फिर एक गहरी साँस लेते हुए उठ बैठा।

"क्या? तुमने क्या कहा?"

"मैं तुम्हें सुबह से चाय पर आने के लिए कह रही हूँ," उसने उठते हुए कहा। उसे एक गहरी राहत महसूस हुई जो इस मामूली मौके के विपरीत थी। "नहीं, यह महिला कुछ गड़बड़ कर रही है," वह मन ही मन कह रही थी। अच्युत उठा, कपड़े बदले, हाथ-मुँह धोए और रसोई में आ गया।

लेकिन नलिनी की राहत क्षणिक थी। अगर अच्युत को एक पल के लिए भी नजरअंदाज किया जाता, तो उसका मन कहीं और भटक जाता; वह अपने काम को भूल जाता और कहीं और खाली निगाहों से बैठा रहता। नलिनी ने उससे हज़ार बार पूछा -

"तुम्हें क्या हुआ है? तुम इतने चुप क्यों हो? तुम इतना क्या सोच रहे हो? तुम्हारा ध्यान कहाँ है?" लेकिन उसने कोई जवाब नहीं दिया। अगर उससे ज़्यादा पूछा जाता, तो वह बस इतना ही बोलता, "क्या? क्या? कहाँ क्या? कुछ नहीं... कुछ नहीं..."

कार्यालय जाना संभव नहीं था। वह एक साधारण छुट्टी का पत्र भी नहीं लिख सकते थे। अंततः, नलिनी ने मन बना लिया और उनके कार्यालय चली गईं। सबकी निगाहें उन्हें सुई की तरह चुभ रही थीं। जब तक वह साहब के कमरे में पहुँचीं, पसीने से भीग चुकी थीं। टूटे-फूटे शब्दों में उन्होंने अच्युत की हालत बताई। साहब को उन पर दया आई, लेकिन वे भी कार्यालय के नियमों को नहीं तोड़ सके। उन्होंने छुट्टी का आवेदन पत्र भरा; अच्युत से उस पर हस्ताक्षर करने को कहा। संभव हो तो उन्होंने नलिनी से डॉक्टर का प्रमाण पत्र भी संलग्न करने को कहा। नलिनी हर किसी से "हाँ, हाँ-" कहती रहीं। लेकिन उनका मन इस अपरिचित बोझ से दबा हुआ था।

वह घर लौटी। अच्युत अभी भी वहीं लेटा हुआ था। उसने उससे कागज़ पर दो-तीन बार हस्ताक्षर करने को कहा, लेकिन उसे समझ नहीं आया कि इसका क्या मतलब है। अचानक उसकी आँखों में आँसू आ गए।

डॉक्टर को घर लाना चाहिए। अच्युत ऐसी स्थिति में उनके पास जाने की कल्पना भी नहीं कर सकती थी। इस क्षण उसे पहली बार अपनी अकेली और बेबसी का गहरा एहसास हुआ। उसकी मदद करने वाला कोई नहीं था। गाँव में उनके कोई करीबी रिश्तेदार नहीं थे, न ही अच्युत के कोई करीबी दोस्त थे। आस-पड़ोस में लोग थे, लेकिन उनके पास जाने में उसे शर्म आ रही थी। वह अजीब तरह से झिझक रही थी।

सुबह के घरेलू कामों का बोझ वैसे ही पड़ा रहा। वह अचानक आई इस नई ज़िम्मेदारी के बोझ तले दबी हुई थी; पर उसके बिना ये सब कौन करेगा? हालात का सामना धैर्य से करना पड़ता है, मुश्किलें हमेशा नहीं रहतीं। कुछ दिनों में सब कुछ पहले जैसा सामान्य हो जाएगा - वह खुद को दिलासा देने की पूरी कोशिश कर रही थी - लेकिन कोई फायदा नहीं हो रहा था। अब डॉक्टर के पास जाना, फिर उनका इलाज... और मान लो, अगर उससे भी अच्युत की हालत में कोई सुधार नहीं हुआ... एक के बाद एक भयानक दृश्य उसके दिमाग में उभर रहे थे... उसकी आँखों से आँसू रुक ही नहीं रहे थे...
नलिनी डॉक्टर के पास गई। पड़ोस के एक बुजुर्ग डॉक्टर के पास। उसे सर्दी-खांसी के अलावा कभी डॉक्टर के पास जाने की ज़रूरत नहीं पड़ी थी। भीड़भाड़ वाला प्रतीक्षालय, लोगों की भीड़, और डॉक्टर की हर मामले को जल्द निपटाने की प्रवृत्ति... इस माहौल में उसकी घबराहट और बढ़ गई। उसे यह भी समझ नहीं आ रहा था कि अच्युत को क्या हो रहा है। डॉक्टर लगातार सवाल पूछ रहे थे। क्या उसे बुखार है? क्या उसे चक्कर आ रहे हैं? क्या उसके पेट में दर्द है?... वह हर सवाल का जवाब ना में दे रही थी।
"लेकिन इस भीड़ को देखो - मैं कैसे आ सकता हूँ?" उसने अंततः थोड़ी चिंता से कहा। लेकिन उसके आँसू भरे चेहरे को देखकर उसे थोड़ी शर्मिंदगी भी महसूस हुई होगी।
"लो, मुझे पता दे दो - मैं दोपहर 1:30 या 2 बजे के आसपास औषधालय बंद होने पर तुमसे मिलने आऊंगा। और दवा विक्रेता के पास दस रुपये छोड़ देना।"
"मैं अपने साथ पैसे नहीं लाया था, मैं बस जल्दी में आया था।"
उसकी ओर देखते हुए वह गुस्से में कुछ कहने ही वाला था; लेकिन जैसे ही उसकी नजर दोबारा उस पर पड़ी, उसने अपने होठों से शब्द वापस ले लिए।
"ओह! ठीक है तो मैं आ जाऊँगा-"
"क्या मुझे अभी घर जाकर पैसे ले आना चाहिए?"
"नहीं, नहीं, मैं खुद आकर देख लूंगा।"
फिर घर वापसी। अच्युत बाहरी कमरे में एक कुर्सी पर बैठा था। अगर वह थोड़ा सा भी हिला, तो बस इतना ही। वही बिखरे बाल, बेजान आँखें, अर्थहीन निगाहें। उसने उसकी तरफ देखा तक नहीं, उससे कुछ पूछा तक नहीं। डॉक्टर देख लेंगे, कोई उपाय सुझाएंगे, इसलिए वह अंदर चली गई, यह सोचकर कि अभी उससे कुछ नहीं पूछना चाहिए।
किसी तरह उसने चावल और दलिया बनाया। उसने अच्युत का हाथ पकड़कर उसे घर के अंदर लाया, उसे दो निवाले खिलाए और किसी तरह जबरदस्ती उसके गले से दो निवाले नीचे उतारे।

उसने उसे जगाया और हाथ धुलवाए, फिर उसे बाहर सोने के लिए भेज दिया। फिर उसने किसी तरह बचे हुए काम निपटाए और बाहर आकर डॉक्टर का इंतज़ार करने लगी।

वह साढ़े बारह बजे से दो बजे तक वहीं बैठी रही। जब उसे लगता कि कोई गाड़ी दरवाजे पर रुकी है, तो वह खिड़की से बाहर झाँकती और वापस अपनी सीट पर बैठ जाती। वह हर दो मिनट में घड़ी देखती। एक बजता, साढ़े एक, दो बजते।

डॉक्टर जल्दी में आए। अंदर के कमरे में दाखिल होते ही उनकी नज़र घर के सामान पर (आदत के मुताबिक) घूम पड़ी। अच्युत की जांच करने में उन्हें दस मिनट भी नहीं लगे। अच्युत उनकी तरफ देख भी नहीं रहा था। उनके सवालों का जवाब भी नहीं दे रहा था।

वे बाहर आए। वे स्टेथोस्कोप हाथ में लिए दरवाजे के पास खड़े हो गए। नलिनी उनके बगल में खड़ी थी, उसका दिल ज़ोर से धड़क रहा था।

"तुम कल शाम से यही कर रहे हो, है ना?" उसने आखिरकार कहा।

सच कहूं तो, शारीरिक रूप से कोई खास चोट नहीं दिख रही है। शायद सदमा लगा होगा। लेकिन यह मेरा काम नहीं है। आपको उसे उस इलाके के किसी डॉक्टर के पास ले जाना चाहिए।

"क्या आप कोई नाम सुझा सकते हैं? मुझे इसके बारे में कुछ नहीं पता।"

"निजी अस्पताल मत जाओ - तुम उसका खर्च नहीं उठा सकते - सीधे सरकारी अस्पताल में जांच करवाओ।"

"लेकिन कौन सा सरकारी अस्पताल?"

"अरे, हमारा मानसिक अस्पताल-"

नलिनी लगभग बैठ ही गई थी।

"अरे, इतना डरो मत! वहाँ मानसिक परीक्षण की सुविधाएँ अच्छी हैं और मुफ़्त भी हैं, इसलिए उन्होंने कहा - देखो, तुम किसी बुज़ुर्ग व्यक्ति को क्यों नहीं बुलाते और उसे यहाँ आने के लिए कहते हो! भले ही स्थिति गंभीर न हो, कभी-कभी इसे जल्दी नियंत्रण में लाना मुश्किल होता है - क्या कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसे बुलाया जा सके? तो उसे बुलाओ... ठीक है, मैं चलता हूँ।"

"रुको... तुम्हें अभी भी अपनी फीस चुकानी होगी..."

"नहीं, नहीं, रहने दो," उसने जल्दी से कहा और चला गया।

उसी दोपहर, उसने वैंस को एक पत्र लिखा और किसी तरह अच्युत से छुट्टी के आवेदन पर हस्ताक्षर करवाकर उसे उसके कार्यालय में जमा कर दिया। उसने अपनी तरफ से हर संभव प्रयास किया था।

अब उसका मन पूरी तरह खाली था। और उस खालीपन में, डर की एक छाया किसी कोने में घर कर गई थी।

वह अच्युत के साथ मुंबई में वान्स के फ्लैट पर एक-दो बार गई थी। वहाँ की शान-शौकत और वैभव देखकर उसका मन भर आया था। अब, जैसे ही वे दोनों अचानक घर में दाखिल हुए, उसके मन में अपने निम्न मध्यमवर्गीय घर और उसके आलीशान घर की तुलना होने लगी। उसे उनसे ज़रा भी ईर्ष्या नहीं थी - लेकिन क्या वान्स अपने भाई से व्यवहार करते समय अपनी सामाजिक स्थिति का थोड़ा सा भी ध्यान नहीं रख सकती थी? जब अच्युत ने उनकी शादी करवाई थी, तब शंकरराव की आमदनी मुश्किल से तीन सौ रुपये थी। आने वाले इन सुनहरे दिनों का सपना किसका था? बेशक, वान्स खूबसूरत थी। यह सच था कि धन-दौलत के दिखावे उस पर जंचते थे - लेकिन एक ज़माने में, वह इसी भाई को रोटी-चावल की तरह मानती थी! कम से कम उसे इतना घमंडी और अपमानजनक व्यवहार तो नहीं करना चाहिए था... वह उसके व्यवहार से दुखी थी, और जैसे ही उसने अच्युत से इस बारे में बात की, उसे भी गुस्सा आ गया।

लेकिन अब वह चुप था। शंकरराव उससे बार-बार पूछ रहे थे और बीच-बीच में वह हल्की सी आवाज़ निकाल रहा था। नलिनी रसोई में बैठी वैन परिवार को सब कुछ बता रही थी। उसने शंकरराव और अच्युत के लिए चाय निकाल ली थी। शंकरराव अपना खाली कप और अच्युत का भरा हुआ कप लेकर अंदर आया, जिसे उसने छुआ तक नहीं था। नलिनी असमंजस में खड़ी हो गई।

"वह कुछ नहीं कहता, भाई!" खून के रिश्ते के बावजूद, उसकी चिंता वैन की तुलना में अधिक वास्तविक लग रही थी।

"उसके डॉक्टर का कहना है कि उसे मानसिक अस्पताल में जांच करवा लो," वैंस ने कहा।

"अभी क्या समय हुआ है?" शंकरारवान ने अपनी घड़ी देखी। "उनका दफ्तर अभी तक बंद नहीं हुआ है, है ना? तो वो एक बार वहाँ जाएगी। वो पता लगाएगी कि उस दिन कुछ खास हुआ था या नहीं - फिर हम वापस आकर देखेंगे कि क्या करना है..."

शंकरराव भी चले गए हैं। उनके पास अच्युत के दफ्तर का पता जरूर होगा। क्योंकि वो बहुत व्यवस्थित थे। और वो सीधे साहब के कमरे में जाकर बिना किसी झिझक के उनसे बात करते थे... नलिली सोच रही थी।

शंकरराव के जाने के बाद, वे दोनों अच्युत के पास बैठ गए। नलिनी, वंसन के सामने उससे बात करने में थोड़ी झिझक रही थी। पति-पत्नी का रिश्ता सबसे करीबी होता है। इसमें ज़रा भी झिझक

नहीं होनी चाहिए। हालाँकि वंसन यह सब समझ गया था, नलिनी कुछ बोल नहीं पाई। ऐसा लग रहा था जैसे वंसन भी कुछ कहना नहीं चाहता था।
"अच्युत! अची!" उन्होंने कुछ धीमी आवाज़ें निकालीं और फिर चुप हो गए। बातचीत का यह हिस्सा नलिनी के लिए किसी काम का नहीं था। अगर वैंस ने एक और सवाल पूछकर इस गतिरोध को तोड़ने की कोशिश की होती, तो वे सफल हो जाते, लेकिन नलिनी भी चुप रही।
शंकरराव करीब छह बजे लौटे। उनके चेहरे पर उम्मीद की कोई झलक नहीं थी। वे एक कुर्सी पर बैठे रुमाल से अपनी गर्दन और गले को पोंछ रहे थे।
"जांच की कोई जरूरत नहीं है, भाई!" उसने आखिरकार कहा, "मैं तुम्हारे डॉक्टर से भी मिला था - वे भी कोई भविष्यवाणी नहीं कर सकते - बेशक, यह उनका काम नहीं है, इसलिए चलो इसे ऐसे ही कह देते हैं..."
"मुझे लगता है कि आप दोनों को हमारे साथ मुंबई चलना चाहिए - वहां मेडिकल चेकअप बेहतर होगा और आपको कुछ मदद भी मिलेगी।"
हैरान नलिनी किसी भी स्थिति के लिए तैयार थी। शंकरराव ने मानो सब कुछ पहले से ही तय कर रखा था। उन्होंने रात की ट्रेन के लिए चार टिकट भी आरक्षित करवा रखे थे। नलिनी ने गौर किया कि उन्होंने वैंस की सलाह नहीं मानी थी, वरना मुंबई से निकलते समय उन्होंने शायद ऐसी ही कोई योजना बना ली होगी।
"नलिनी, ट्रेन रात दस बजे है। इसलिए, थोड़ा संयम रखो, अंदर कुछ भी खाने-पीने की ज़रूरत नहीं है। चलो स्टेशन पर कुछ ले लेते हैं। और इतना डरो मत - पहले सब कुछ देख लेते हैं... कुछ भी फालतू मत सोचो... हम तुम्हारी मदद के लिए ही तो हैं, है ना?"
चौबीस घंटों में पहली बार उसे सहानुभूति के शब्द सुनने को मिले। उसका मन पूरी तरह से भ्रमित था, और वह बैठ गई और रोने लगी।
"छी! छी! भाभी! ऐसा मत करो" - वंसा थोड़ी दूरी पर खड़ी होकर बात कर रही थी।
"अरे! जाओ और देखो! उसे काबू में करने में उसकी मदद करो!" शंकरराव ने कहा।
नलिनी को भी वो आवाज़ कुछ ज़्यादा कर्कश लगी। क्या वैंस को काम पर लगा देना चाहिए? बस यही सोचकर वो होश में आ गई। उसने अपनी आँखें पोंछीं और घर की सफाई करने लगी। उसे पैकिंग का ज़रा भी अनुभव नहीं था। नहीं, नहीं, वो बस सामान को बैग में ठूंस रही थी। अच्युत अपनी बहन के घर जा रहा था - उसे ये एहसास नहीं था कि वहाँ उसे किसी चीज़ की कमी महसूस नहीं होगी।

अच्युत बर्थ पर लेटा हुआ था। नलिनी उसके चरणों में एक कोने में बैठी थी। शंकररावनी ने उसे तीन-चार बार ऊपर वाली बर्थ पर सोने के लिए कहा था। उन्होंने कहा था, "मैं नीचे हूँ, मैं उसे देख रहा हूँ"; लेकिन फिर भी वह हिली नहीं। छत पर एक छोटा नीला दीपक जल रहा था। नलिनी शीशे पर नज़र गड़ाए बाहर के अँधेरे संसार को निहार रही थी। शीशे में डिब्बे का धुंधला सा प्रतिबिंब दिख रहा था, लेकिन बाहर का प्रतिबिंब, अज्ञात चिंगारियों से भरा हुआ, भयानक काली रात के हमले का शिकार हो रहा था। उसे लगा कि यही उसके जीवन में इस क्षण घटित हुआ है। साधना का दैनिक जीवन पूरी तरह से धूसर हो गया था, जैसे शीशे पर प्रतिबिंब - उसके पैरों के नीचे का सहारा खिसकने लगा था - और इस रहस्यमयी रात की तरह, कुछ अज्ञात, क्रूर, समझ से परे उसके जीवन पर हमला कर रहा था - उसका छोटा सा संसार अँधेरे में डूबकर गायब होने वाला था। चाहे यह विचार हो या रात की ठंड, उसके सभी अंग अचानक जाग उठे...

वह सुबह तड़के ही सो गई होगी। जब शोर सुनकर उसकी नींद खुली, तो ट्रेन दादर पहुँच रही थी। समय की पाबंदी दिखाते हुए, उसने अच्युत को आगे बढ़ाना शुरू कर दिया। फिर वे सब समय पर कैसे उतर पाते? बाहर का प्लेटफार्म तो और भी ठंडा था। वह सोच-विचार और नींद से जागने के कारण बेहद थकी हुई थी।

वंसा की सास उसके साथ थी। नलिनी उसे पहली बार देख रही थी। उसे लगा कि नलिनी को उसका यहाँ आना बिल्कुल पसंद नहीं आया होगा। लेकिन शंकर राव के सामने बोलने की हिम्मत किसी में नहीं थी। जब नलिनी आई, तो उन्होंने उसके लिए एक कमरा खाली कर दिया। वंसा की असल हालत को वे सबसे बेहतर जानते थे।

"नलिनी, अब चाय पी लो और थोड़ी देर सो जाओ। अच्युत्वी, बिल्कुल चिंता मत करो - मैं आज शाम डॉक्टर को फोन कर दूंगी और हम देखेंगे। तुम अच्छे से आराम करो - नहीं तो तुम्हें दवा लेने का समय हो जाएगा।"

वैंस परिवार के दो छोटे बच्चे अचानक आए मेहमानों को कुछ हैरानी से देखने लगे।

"क्या ये चाचाजी ठीक हैं?" शंकरराव उनसे पूछ रहे थे। "और ये चाचीजी - लेकिन अब चाचाजी ठीक नहीं हैं - इसलिए मैं चाचाजी और चाचियों को परेशान नहीं करना चाहता, ठीक है?"

नलिनी की आदत नहीं थी कि वह सुबह, काम पर या किसी सार्वजनिक स्थान पर मेहमान होने पर सोए। उसने पचास मिनट आराम करने और फिर घर जाकर काम पर लौटने की योजना बनाई थी। शंकरराव की बात एक तरह से सच थी। उसकी अधिकांश चिंताएँ अब दूर हो चुकी थीं। इसलिए वह थोड़ी देर के लिए पलंग पर लेट गई - और गहरी नींद में सो गई।

जब वह उठी, तो दोपहर के एक बज रहे थे! शंकरराव काम पर चले गए थे। घर में सन्नाटा था। वंशा भी सो रही होगी। लेकिन अच्युत बगल वाले पलंग पर बेसुध पड़ा था। क्या किसी ने उसके खाने-पीने के बारे में पूछा? यही पहला विचार उसके मन में आया। वह उठी और रसोई में गई। नौकरानी बर्तन धो रही थी। नलिनी की आवाज़ सुनते ही वंशा भी अंदर आ गई। नलिनी थोड़ी शर्मिंदा होकर बोली,
"एक बार! मैं सो गया था - ध्यान करने की कोई गुंजाइश ही नहीं बची थी, देखो-"
असल में, उसे इसे हंसकर टाल देना चाहिए था; लेकिन उसने बस "हां-" कहा और फिर नौकरानी की ओर मुड़कर थोड़ी चिंतित आवाज में बोली,
"जय, इन दोनों को अभी खाना खाना है - क्या तुम शाम को खाना लेने वापस आओगी?" हमारे सामने ये बहस क्यों? नलिनी को लगा जैसे उसे गुस्सा आ रहा हो। नौकरानी ने भी धीमी आवाज़ में कहा, "देखती हूँ अगर कर सकूँ तो -" और दरवाज़ा बंद करके चली गई। नलिनी वहीं खड़ी रह गई, असमंजस में। पता नहीं वैन क्या सोच रहे थे, वे थोड़ा आगे आए और उसे खाना रखने की जगह दिखाई, थालियाँ, कटोरियाँ और बर्तन दिखाए।
नलिनी अच्युत को जगाने गई। वह सोया नहीं था, बस लेटा हुआ ऊपर देख रहा था। जैसे ही उसने उसे थोड़ा सा हिलाया, उसने देखा कि उसने गद्दा खराब कर दिया था। हालाँकि वह समझती थी कि यह स्वाभाविक था, इसमें उसकी कोई गलती नहीं थी, फिर भी उसे उस पर बहुत गुस्सा आया। अब वह वैन्स को यह कैसे बताती? आखिरकार, अपनी सारी शर्म को निगलते हुए, उसे कहना ही पड़ा - "अग्बाई!" वैन्स ने कहा। "तो फिर, तुमने पहले क्यों नहीं सोचा? कम से कम उस पर एक रबर की चादर तो डाल सकती थी -"
नलिनी मन ही मन उलझन में थी। वह ऐसा कैसे सोच सकती थी? क्या उसने कभी ऐसी चीजें अनुभव की थीं? और जब वह आई थी तो कितनी थकी हुई थी! इन बातों के बारे में सोचना भी कष्टदायक था! उसने अच्युत का गद्दा साफ किया। उसका हाथ पकड़कर उसे बाथरूम में ले गई। उसने उसकी आंखें, मुंह, हाथ और पैर धोए, तौलिए से पोंछा, उसे घर के अंदर ले आई, उसे दो निवाले खिलाए... लेकिन उसकी खुद की भूख गायब हो गई थी... उसने एक गिलास ठंडा पानी लिया और बस।
वह अपने दिए गए कमरे में बैठी थी, अच्युत सो रहा था। कुछ औरतें वान्स के पास आ रही थीं। उनकी मधुर आवाज़ उसके कानों तक पहुँच रही थी। वह खुद उस संगति में असहज महसूस कर रही थी। वह यह भी नहीं चाहती थी कि वान्स किसी से अपना परिचय दे। वह बस इतना चाहती थी कि वह उसकी सबसे अच्छी दोस्त के साथ थोड़ा स्नेहपूर्ण व्यवहार करे।

पांच बजे शंकरराव को फोन आया। वह डॉक्टर को लेकर आ रहे थे। वंशा जल्दी से अपने कमरे में आई। उन्होंने वंशा से कपड़े बदलने और बाल गूंथने को कहा... वंशा कुछ समझ नहीं पा रही थी... क्या डॉक्टर उसे देखने आ रहे थे या अच्युत की जांच करने? लेकिन उसने कुछ नहीं कहा।
शंकरराव सीधे उसके कमरे में आए। “क्या कह रही हो, अच्युत? क्या उसने कुछ खाया?” फिर उसे ध्यान से देखते हुए उन्होंने पूछा, “और तुम? क्या तुम्हें नींद आई या नहीं? तुम्हारा चेहरा इतना सूखा क्यों लग रहा है? तुम अभी यहाँ आई हो – उसके बारे में इतनी चिंतित क्यों हो?”
वह उन्हें क्या बताएगी?
"डॉक्टर को यहाँ क्यों लाना है? किसी को यह मत लगने देना कि तुम अजनबी हो, ठीक है?"
फिर भी, डॉक्टर के आने पर वह एक तरफ खड़ी रही। वे अच्युत की जांच कर रहे थे। वह उनके कार्यों, उनके इरादों और उनकी अपेक्षाओं के बारे में कुछ भी नहीं समझ पा रही थी। अंत में, एक गहरी सांस लेते हुए, उन्होंने अपना सामान अपने बैग में पैक किया। बैग उठाते हुए उन्होंने कहा,
"क्या हम बाहर बैठें?" उसने अपने प्रश्न में नलिनी को भी शामिल कर लिया था। नलिनी ने अच्युत को एक बार देखकर बाहर कदम रखा। डॉक्टर का चेहरा गंभीर लग रहा था और नलिनी का दिल और भी बैठ गया। भविष्य अंधकारमय होता जा रहा था। उसका मन असंतुलित था और वह हर दिशा में भाग रही थी। डॉक्टर उससे बात कर रहा था, लेकिन उसके शब्द उसे समझ नहीं आ रहे थे। तभी उसे एहसास हुआ कि वह उससे प्रश्न पूछ रहा है। तब उसे अपना ध्यान बातचीत पर केंद्रित करना पड़ा। उसके प्रश्न अनेक और अप्रत्याशित थे। उनकी शादी को कितना समय हो गया था? अच्युत का स्वभाव कैसा था? क्या उनके बीच कभी मतभेद होते थे? सौम्य या उग्र? क्या उसे अपना काम पसंद था? क्या वह कभी निराश हुआ था? क्या उसने कभी कुछ और करने की इच्छा व्यक्त की थी? क्या उसके करीबी दोस्त थे? वह कितनी बार दूसरों के घर जाता था? क्या उसे लोगों से मिलना-जुलना पसंद था? उसके शौक क्या थे? क्या वह कभी अपनी इच्छानुसार जीवन न जी पाने के कारण चिढ़ जाता था?
ऐसा लग रहा था मानो वे उसके वैवाहिक जीवन का हर एक अंश निचोड़ रहे हों। यह जानने का कोई तरीका नहीं था कि उसके जवाबों से वे संतुष्ट हुए या नहीं; लेकिन ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उनकी जिज्ञासा कभी शांत नहीं होगी। उन्हें शायद कुछ भी निजी महसूस नहीं हुआ होगा... वे उन चीजों के बारे में सवाल पूछ रहे थे जिनके बारे में उसने सोचने की भी हिम्मत नहीं की थी... शर्म से उसका चेहरा लाल हो गया, लज्जा से उसकी गर्दन झुक गई... लेकिन उनके सवाल अभी खत्म नहीं हुए थे। अंततः, उसकी अपनी आवाज लड़खड़ा गई और रुक गई।

डॉक्टर शंकरराव से बात कर रहे थे। उसे समझ नहीं आ रहा था कि वो क्या कह रहे हैं। "कैटेटोनिया", "अवसादग्रस्त अवस्था" जैसे शब्द उसके कानों में गूंजते रहे। शंकरराव से कुछ तय करने के बाद, वो आखिरकार चले गए। उन्होंने उसे कोई आश्वासन नहीं दिया। क्या वो भूल गए? उसे लगा कि ऐसा हो ही नहीं सकता...

वह सुन्न मन से अच्युत के कमरे में आई थी। कुछ ही मिनटों में शंकरराव कमरे में दाखिल हुए। वह गौर से देख रही थी कि क्या उनके चेहरे पर आशा की कोई किरण है। उसे लगा कि आशा-निराशा, भय-संतोष, सब कुछ हम तक परावर्तित रूप में, अप्रत्यक्ष रूप से पहुँचता है। उसमें शंकरराव से यह पूछने की हिम्मत भी नहीं थी कि डॉक्टर ने क्या कहा था।

कुछ देर बाद उसने कहा, "नलिनी, डॉक्टरों को अच्युत की बीमारी पूरी तरह समझ नहीं आई है। उन्हें एक आशंका है - लेकिन इसके लिए उन्हें उसे अस्पताल ले जाना होगा और उसकी पूरी तरह से जांच करानी होगी - तभी वे तय कर पाएंगे कि क्या इलाज करना है..."

"जैसा तुम्हें ठीक लगे वैसा करो-" उसने नीचे देखते हुए बुदबुदाया।

“मैंने कल के लिए भी अपॉइंटमेंट ले लिया है। चलो कल शाम को चलते हैं और ज़्यादा चिंता मत करना, ठीक है?” उसने उठते हुए कहा। उसने ये नहीं कहा कि अच्युत जल्दी ठीक हो जाएगा, वो मन ही मन सोच रही थी। अब तक तो वो हर बार उसे ऐसे ही दिलासा देता था - लेकिन अब उसने ये शब्द नहीं कहे - क्यों? क्या उन्हें सुधार की कोई उम्मीद नहीं है? क्या डॉक्टर ने उन्हें कुछ पक्का बताया है? क्या अस्पताल में ये चेकअप सिर्फ़ हमारी तसल्ली के लिए है? क्या अच्युत ज़िंदगी भर ऐसे ही रहेगा? क्या उसमें कोई और चमत्कारिक बदलाव आएगा?

उसके मन में संदेह बाढ़ की तरह उमड़ने लगे। वह अपने मन पर काबू नहीं रख पा रही थी। वे बुरे विचार उसके सिर में गुंबद में गूंजती आवाज़ की तरह चक्कर लगा रहे थे। ये विचार बिजली की तरह असहनीय होते जा रहे थे। उसने दोनों हाथों से अपना सिर कसकर पकड़ लिया; लेकिन अंदर उठ रही इस उथल-पुथल से कोई छुटकारा नहीं था। वह अच्युत को देख रही थी, जो इन सब का स्रोत था। क्रोध, प्रेम, सहानुभूति, भय, करुणा... अनेक भावनाओं का मिश्रण बन रहा था... लेकिन अच्युत इन सबसे पूरी तरह अलग था... मानो बाहरी दुनिया से उसका कोई नाता ही न हो... अब पहली बार उसके मन में जिज्ञासा जागी... वह इतना शांत लेटा हुआ था... लेकिन क्या यह शांति उसके भीतर गहराई तक पहुँच सकती है? क्या ऐसा हो सकता है कि उसका अंतर्मन विचारों से भरा हो, ठीक वैसे ही जैसे समुद्र, जो सतह पर शांत दिखता है, विचारों के सागर से भरा होता है? क्या उसका मन, इस शांत, ठंडे, गतिहीन स्टील के खोल में फंसा हुआ, बाहर निकलने के लिए बेताब होकर संघर्ष कर रहा

हो? वह उसकी उस अजनबी, अनजानी, पागल दुनिया तक कैसे पहुँच सकती थी? वह किस माध्यम से उससे संपर्क कर सकती थी? उसे यह एहसास नहीं था कि वह यह सवाल पहली बार सोच रही थी; लेकिन स्थिति के तनाव के कारण, उसके भीतर एक सूक्ष्म परिवर्तन हो रहा था।

शाम को नलिनी, अच्युत और शंकरराव अस्पताल के लिए रवाना हुए। अच्युत के कपड़े बदलना और उसे घर से बाहर ले जाना किसी चमत्कार से कम नहीं था। वह एक साल के बच्चे से भी कम समझदार था। नलिनी अपनी आवाज़ में ज़रूरी दृढ़ता नहीं ला पा रही थी। अजनबियों की निगाहों का दबाव लगातार उसके मन पर बना हुआ था। उसे ऐसा लग रहा था जैसे वह झिझक के बोझ तले दब रही हो। वह समझती थी कि अच्युत और मैं पति-पत्नी हैं, कि हमें उसकी भलाई के लिए जो भी ज़रूरी हो, वह करना चाहिए, कि हमें दूसरों के बारे में नहीं सोचना चाहिए; लेकिन व्यवहार में वह बात नहीं आ रही थी। अच्युत के लापरवाह व्यवहार और अज्ञानता पर वह इतनी नाराज़ कभी नहीं हुई थी जितनी उस समय थी।

जब हम अस्पताल पहुँचे, तो वही सारा दृश्य फिर से दोहराया गया। वहाँ दर्शकों की भीड़ थी, सहानुभूति बहुत कम लोगों की आँखों में थी। अच्युत को अंदर ले जाया गया। उस कमरे में कई समझ से परे, लगभग डरावने उपकरण थे। वहाँ के डॉक्टर अपरिचित थे, उनके व्यवहार और अच्युत के साथ उनके बर्ताव में एक अजीब सी खामोशी झलक रही थी। नलिनी वहाँ बैठे बिना ही बाहर गलियारे में आई और एक बेंच पर बैठ गई। उसके ठीक ऊपर डॉक्टरों, नर्सों और मरीजों की चहल-पहल थी। और धीरे-धीरे उसे एहसास हुआ कि यहाँ आने वाले या लाए जाने वाले मरीज आम मरीज नहीं थे। उनमें से कुछ इशारे कर रहे थे और खुद से बातें कर रहे थे, कुछ की आँसू भरी आँखें आसपास के सभी लोगों पर टिकी थीं, कुछ को तो स्ट्रेचर पर बाँधना पड़ा था... क्या वह अच्युत की कतार में बैठने वाला था? एक विचार उसके दिल को चीरता हुआ आया... क्या वह भी उसकी तरह पागल हो जाएगा? क्या वह रोजमर्रा की दुनिया से अपना नाता तोड़ लेगा? क्या मैं अपनी ही बनाई हुई एक पागल, अंधेरी, अर्थहीन, दर्द भरी दुनिया में फंसी रहूंगी?... उसने अपनी आंखें बंद कर लीं।

शंकरराव आकर उसके पास खड़े हो गए। जैसे ही उसने प्रणाम किया, उन्होंने कहा, "चलो, अच्युत को ले चलते हैं। उन्होंने उसकी जांच कर ली है। रिपोर्ट आने में एक-दो दिन लगेंगे। फिर वे इलाज के तरीके और विधि के बारे में सुझाव देंगे। चलो अब।"

फिर वापसी का सफर। घर आकर इंतज़ार करना। ज़िंदगी बस दांव पर लगी थी। अच्युत की बीमारी गंभीर न हो जाए... ये शब्द भी अब उसके मुंह से नहीं निकल रहे थे... क्योंकि उसे अब कोई शक नहीं था कि कुछ गंभीर हो गया है। वह अच्युत को देख रही थी। वह वान्स की यथासंभव मदद कर रही

थी। लेकिन उसने समझदारी का एक शब्द भी नहीं कहा। न उससे, न उससे... लेकिन उसने अच्युत की तरफ देखा भी नहीं। उसे नलिनी और अच्युत का आना पसंद नहीं था। जैसे-जैसे उनका ठहरना बढ़ता गया, उसकी आँखों में नाराज़गी और भी स्पष्ट होती गई। नलिनी देख रही थी, सब सह रही थी।
रिपोर्ट चार दिन बाद आई। उसे समझ नहीं आया कि डॉक्टरों ने क्या निदान किया है। उन्होंने बिजली के झटके देने का सुझाव दिया था। हफ्ते में दो बार। दस झटके लगने के बाद, उसकी दोबारा जांच होनी थी। लेकिन असली सवाल यह था कि अच्युत को वहां कैसे ले जाया जाए। शंकरराव का दफ्तर था। उनके पास समय नहीं था। नलिनी मुंबई से परिचित नहीं थी; अगर होती भी, तो लोकल ट्रेन या बस से अच्युत को ले जाना नामुमकिन था। एकमात्र उपाय टैक्सी थी। और वह भी वापसी की यात्रा के लिए। क्योंकि नलिनी अकेले अस्पताल जाकर टैक्सी कहां से लाएगी?
उसे यह करना ही था, भले ही उसका जीवन बोझ तले बिखर रहा था। टैक्सी मीटर पर रुपये गिनते हुए वह बस तड़प रही थी। हर शिपमेंट का खर्च - ऐसे दस शिपमेंट, फिर दोबारा हिसाब लगाना... यह हिसाब उसके बस में था... यह खर्च अब शंकरराव उठा रहे थे... लेकिन यह कब तक चलेगा?
उस शाम वह डरते-डरते उनके कमरे में गई थी। जैसे ही वह अंदर दाखिल हुई, वे दोनों चुप हो गए।
"इधर आओ, इधर आओ-" शंकरराव ने कहा था। नलिनी शर्मिंदा होकर कुर्सी के किनारे पर बैठी थी। उसे अपनी बात जल्दी खत्म करनी थी। उसने नीचे देखा और कहा,
"आज मुझे करीब बारह रुपये का बिल मिला। और इसमें अस्पताल का शुल्क भी शामिल होगा!"
"ठीक है... तो फिर क्या?" शंकरराव ने सरल स्वर में कहा।
"अभी दस और खेपें आनी बाकी हैं... उनके पास चेक हैं - ये मैं लाई हूँ..." उसने अपनी मुट्ठी खोली और उसे आगे बढ़ाया। उसकी मुट्ठी में पसीने से भीगी हुई दो लड़ियों वाली सोने की चेन थी।
"ओह!" शंकरराव अचानक उठे और उसके पास आए।
"आपको कितना खर्च करना पड़ेगा? और इतने स्नेह से यह काम कौन करेगा?" नलिनी की आवाज लड़खड़ा रही थी।
“क्या पैसे गिनने का समय हो गया है?” उसने भारी आवाज़ में कहा। “इसे अंदर ही रखो। जब अच्युत ठीक हो जाएगा, तो मैं पूरा बिल भेज दूंगा - उसमें मेरे खर्चे भी शामिल होंगे।”
"सच में, इसे अपने पास ही रहने दो-" नलिनी अभी भी ऊपर नहीं देख रही थी। "अगर तुम इसे अभी इस्तेमाल नहीं करना चाहती, तो फिर कब?"
"ओह!" शंकरराव अपनी पत्नी की ओर मुड़े, "ओह, तुम उसे बता दो... वरना तुम इसे उसके गले में डाल दोगी..."

पहले दो दौरों में अच्युत में कोई फर्क नहीं आया था। नलिनी की आंखें प्रेम और भय से और भी पैनी हो गई थीं। उसमें इतना सा भी बदलाव उसकी नजर से नहीं बच सकता था; लेकिन कोई फर्क नहीं था। जिस खोल में उसकी पहचान कैद थी, वह अब भी बरकरार था, उसकी चेतना अब भी बाहरी दुनिया के रंगों, आवाजों, गंधों और स्पर्शों से पूरी तरह अलग थी।

यह बदलाव बेहद तेज़ी से हुआ। तीसरे दौर में उसे करारा झटका देने के बाद वह उसे घर ले आई थी। हमेशा की तरह, इस दौर ने भी उसे बेदम और थका दिया था। उसके प्रति उसका गुस्सा हर बार बढ़ता ही जा रहा था। दो घूंट पानी पीकर वह उसके बिस्तर के पास आकर बैठ गई। उसकी निगाहें उसके भावहीन, बेपरवाह चेहरे पर टिकी थीं। यह दुखद विचार उसके मन में घर कर रहा था कि यह दुर्भाग्य कब तक जारी रहेगा।

लेकिन उसकी निगाहें छत पर टिकी हुई थीं। हवा थमने पर सब शांत हो गया, मानो कोई झील काँच की तरह शांत हो गई हो। और पल भर में, उसकी निगाहें बदल गईं। जैसे किसी दीपक की बुझी हुई लौ, उसकी आँखें अचानक उसे जानी-पहचानी लगने लगीं... इसमें कोई शक नहीं था कि उसकी आँखों पर पड़ा विरक्ति का पर्दा हट गया था... लेकिन अब, उन आँखों से जो कुछ भी झाँक रहा था, वह नलिनी को जाना-पहचाना नहीं लग रहा था; बल्कि, उसे थोड़ा डर लग रहा था... क्योंकि उन आँखों में जलती लौ साफ, सुंदर नहीं थी... वह धूसर, लाल-काली थी... एक पल के लिए, उसे एहसास हुआ कि यह उस नई दुनिया की एक झलक थी जिसमें अच्युत खो गया था... ऐसा लगा जैसे उस दरवाजे का पर्दा थोड़ा सा हट गया हो और उसे एक रोमांचकारी अनुभव हुआ हो...

उस एक स्पर्श ने उसे झकझोर दिया और वह बेसुध हो गई। यह रहस्योद्घाटन भयानक, अकल्पनीय था... ऐसा लग रहा था मानो अच्युत अब तक दुनिया की सीमा पर खड़ा था... और अब एक छोटे से झटके से वह सीमा पार कर गया हो... उन्होंने उसे कितना ज़ोरदार झटका दिया था! वह जानती थी कि वह उनके सामने भोली थी और वह किसी को भी इस बात का यकीन नहीं दिला सकती थी, किसी को समझा नहीं सकती थी...

लेकिन उसे अपने दिल में पूरा यकीन था...

उसमें यह कहने की हिम्मत नहीं थी कि यह इलाज गलत है; अस्पताल का हर दौरा उसे नरक की यात्रा जैसा लगता था। उसका मन शर्म से चूर-चूर हो रहा था, उसका शरीर क्रोध से चूर-चूर हो रहा था। अच्युत में सुधार होने के बजाय एक चमत्कारिक परिवर्तन हो रहा था। उसके चेहरे पर वह धुंधली छाया हमेशा के लिए स्थिर हो गई थी... असली अच्युत उसके नीचे गायब हो गया था; अब उसे

उससे डर लगने लगा था; क्योंकि अब उसका तटस्थ भाव खत्म हो गया था और वह एक अलग, थोड़ा डरावना रूप धारण कर रहा था।

वैन्स का व्यवहार दिन-ब-दिन असहनीय होता जा रहा था। अच्युत-नलिनी के ठहरने और उन पर हुए खर्च को लेकर वैन्स की नाराज़गी अब उसकी आँखों में साफ झलक रही थी। वह नलिनी से एक शब्द भी नहीं बोल पा रही थी। उनकी शत्रुता उसे भी चुभने लगी थी। यह दोहरी दुविधा असहनीय हो गई और आखिरकार उसने शंकरा राव से अपने मन की बात कही। वाघ का वाघोबा वाला ज़माना बीत चुका था। अब खुलकर बोलने का समय आ गया था... "वैन्स को हमारा यहाँ रहना पसंद नहीं है - और उनमें भी कोई सुधार नहीं हुआ है... यह कब तक चलेगा?" वह अपनी आँखें पोंछते हुए कह रही थी। "बल्कि, मुझे हमारे घर ले चलो - जो भी होना है, घर पर ही हो जाए - बाहर तमाशा करने की कोई ज़रूरत नहीं है..."

शंकरराव ने उसे दो-तीन बार समझाने की कोशिश की, लेकिन उनके शब्दों में भी कोई दम नहीं था। उनकी अच्छाई केवल उन्हीं तक सीमित थी। वे वान परिवार पर एक सीमित हद तक ही अधिकार जता सकते थे। नलिनी उनसे नाराज़ नहीं हुई। उन्होंने नलिनी पर इतने उपकार किए थे कि वह उनके बोझ तले दब गई थी।

अच्युत को गाड़ी में बिठाए हुए अभी कुछ ही दिन हुए थे कि जब वह शंकरराव को अलविदा कहने के लिए मुड़ी (वैन दूर खड़ी थीं), तो शंकरराव ने उसे एक बटुआ थमा दिया। उन्होंने कहा, "इसमें डॉक्टर की रिपोर्ट है।" गाड़ी चलने के बाद जब उसने बटुआ खोला, तो देखा कि उसमें न केवल डॉक्टर की रिपोर्ट थी, बल्कि दस-दस रुपये के तीस नोट भी थे...

एस्पिरिन से सिरदर्द काफी हद तक कम हो गया था। हवा गर्म थी, लेकिन पसीने से तर शरीर को नमी दे रही थी। बाहर के कमरे से कोई आवाज़ नहीं आ रही थी। अच्युत ज़रूर पलंग पर लेटा होगा। एक पल के लिए वह उसे भूलकर शांति से सोच सकती थी। शांत चिंतन ज़रूरी था - लेकिन तब तक उसके मन में ज़रूरी संतुलन या गहराई नहीं आई थी। अब उसे एहसास हुआ कि पिछले तीन हफ़्तों में उन दोनों के बीच बहुत बड़ा बदलाव आया था। इन तीन हफ़्तों में उसने बहुत कुछ सीखा था। आख़िरकार, उसके और अच्युत के लिए एक-दूसरे के सिवा कोई और नहीं था। पति-पत्नी का रिश्ता उसकी भोली समझ से कहीं ज़्यादा व्यापक और विस्तृत था। पहले उसका मन कच्चा था और वह भ्रमित होकर इधर-उधर भटकती रहती थी। अब अनुभवों के कठोर झटकों ने उसके मन को आकार दिया था। उसने दृढ़ संकल्प के रूप में एक नया रूप ले लिया था... उसे समझ आ गया था कि उसे क्या करना है।

दो-तीन दिनों से सुनाई न देने वाली गुनगुनाहट की आवाज़ एक बार फिर उसके कानों में गूंज रही थी। बिजली के झटके भले ही बंद हो गए थे, लेकिन अच्युत में आया बदलाव रुका नहीं था। ऐसा लग रहा था मानो सीमा के पार कोई ढलान हो और वह उस ढलान पर फिसल रहा हो... वह धीरे-धीरे अपनी गति बढ़ा रहा था और नीचे जा रहा था। उसकी आँखों में कभी-कभार आने वाली लाली ज़रा भी कम नहीं हुई थी। किसी भावना के अचानक आवेग से उसका चेहरा विकृत हो गया था। अब इसमें यह गुनगुनाहट की आवाज़ भी जुड़ गई थी। आवाज़ ऊपर से नहीं उठ रही थी, बल्कि ऐसा लग रहा था जैसे भीतर से आ रही हो। पहले तो उसने अच्युत को जगाने की कोशिश की, उसे हिलाने की कोशिश की - लेकिन उसकी लाल, भावुक आँखें, कसे हुए दाँत और पागल सा चेहरा देखकर उसका खून डर से जम गया और वह डर के मारे पीछे हट गई... अब वह आवाज़ फिर से आ रही थी।

लेकिन वंशांकड़ की कहानी अलग थी। उसकी मदद करने के लिए कई लोग थे, लेकिन संख्या में नहीं। अब वह अच्युत के साथ अकेली थी। और उसे उससे डर लगने लगा था। जो बात ऊपर से विरोधाभासी लग रही थी, वही सच थी। एक समय वह उसके सबसे करीब था - लेकिन अब उसमें कुछ बदल गया था... उसके शरीर में कुछ नया, अलग, अजनबी और भयानक हलचल हो रही थी। वही कभी-कभी अपनी लाल आँखों से झाँकता था... और यह दहाड़ने की आवाज़ उसी की थी... उसे इस नए अच्युत से डर लगने लगा था; लेकिन अब उसके अलावा वहाँ और कौन था? चाहे वह चाहती हो या न चाहती हो, उसे आगे बढ़ना चाहिए था, अच्युत की मदद करनी चाहिए थी... वह दीवार से उठी, लेकिन उसके कदम कितने भारी थे...

नलिनी दरवाजे पर आकर रुक गई। सरसराहट की आवाज अभी भी आ रही थी। एक पल के लिए उसकी नज़र कमरे पर टिक नहीं पाई। बाहर पेड़ों से आती हरी रोशनी कमरे में फैल रही थी। अच्युत पलंग पर लेटा हुआ था; लेकिन वह बाघ की तरह बेजान नहीं लेटा था। उसके शरीर से एक अलग ही चमक निकल रही थी। वह कमरे में आई, उसके पलंग के पास आकर खड़ी हो गई। उसका चेहरा इतना भयानक लग रहा था कि नलिनी उसे देख नहीं पा रही थी। वह अपनी आँखें कसकर बंद कर रहा था, फिर खोल रहा था - उसकी जलती हुई निगाहें पूरे कमरे में घूम रही थीं। उसकी मुट्ठियाँ कसकर बंद थीं, फिर खुल रही थीं और उसकी अकड़ी हुई उंगलियाँ पंजों की तरह मुड़ रही थीं; मानो कुछ खरोंचने की कोशिश कर रही हों। उसका शरीर भी बेकाबू हो रहा था और उसके कसे हुए दाँतों से घिसने की आवाज आ रही थी... यह साफ था कि अच्युत अपने आसपास की दुनिया को पूरी तरह भूल चुका था और अपनी ही किसी अजीब और भयानक रचना का कैदी बन गया था... एक कैदी; क्योंकि वह खुद इस अनुभव को असहनीय पा रहा था...

वह उसके लिए क्या कर सकती थी? वह किस माध्यम से उस तक पहुँच सकती थी? जब ध्वनि, स्पर्श, दृष्टि और गंध जैसी रोजमर्रा की संवेदनाएँ अर्थहीन हो गईं, तो वे एक-दूसरे से कैसे जुड़ सकते थे? ये दोनों स्तर कितने अलग थे...

हमला जितनी अचानक आया था, उतनी ही अचानक शांत भी हो गया। अच्युत शांत हो गया। वह हांफ रहा था, उसका शरीर अभी भी कांप रहा था, उसके चेहरे से पसीना बह रहा था... लेकिन ये तो हमले के मात्र निशान थे; हमले की लहर उसके ऊपर से गुजर चुकी थी... उसका चेहरा पूरी तरह भावहीन हो गया था...

अब तुम्हारा क्या हाल हुआ? अगर तुमने उससे पूछा होता? एक विचार अचानक उसके मन में आया। फिर उसे याद आया - उससे पहले किसी ने उससे यह सवाल नहीं पूछा था; उसे यह यकीन दिलाया गया था कि बाकी सब उसकी कल्पना मात्र हैं; वह उससे ज़्यादा समझदार तो बिल्कुल नहीं थी - लेकिन एक बात पर वह ज़्यादा आत्मविश्वास से बोल सकती थी - करीबी संबंध होने के कारण वह अच्युत की भावनाओं को किसी और से ज़्यादा आसानी से समझ सकती थी... अगर उसके मन में कोई विचार आता, तो वह शायद उसके अपने विचारों से ही मेल खाता...

लेकिन उसे इस विशेष परिस्थिति का लाभ उठाना ही था। अब वह इसका सही अर्थ समझ चुकी थी। अगर अच्युत उसके इशारे पर सामान्य दुनिया में नहीं आ सकता था, तो उसे उसकी विसंगतियों की दुनिया में प्रवेश करना ही था... यह कुछ ऐसा था जहाँ वह एक घंटे के लिए किसी पागल को शांत करने के लिए सच बोलने का नाटक करता था; लेकिन यह उससे कहीं अधिक गंभीर था... क्योंकि यहाँ केवल उसके शब्दों को हूबहू दोहराने का सवाल नहीं था... उसे वास्तव में उसकी मान्यताओं, उसके अनुभवों से जुड़ना था... केवल तभी जब वह वहाँ पहुँच सके जहाँ वह था, तभी वह उसे उसकी आँखों से देख सकती थी, उसे महसूस कर सकती थी, शायद उसकी मदद भी कर सकती थी...

लेकिन खतरा! अज्ञानी मन में भी खतरे की घंटी बज रही थी। ज्ञान के सुरक्षित किनारे को छोड़कर, वह इसके तूफानी, अनियमित, अकल्पनीय, विचित्र संसार में प्रवेश करने वाली थी... क्या उसमें प्रतिरोध करने की शक्ति थी? क्या वह धारा में बह जाएगी? भले ही वह आग की प्रकृति को न जानती हो, जंगली जानवर भी इसके खतरे को भांप सकते हैं...

नलिनी कमरे में आ चुकी थी; एक पल के लिए उसके मन में वापस जाने का ख्याल आया; लेकिन उसने उसे झटक दिया। उसने दरवाजे के पास एक कुर्सी खींची और उस पर मजबूती से बैठ गई। अच्युत अब चुप हो गया था। उसकी ओर देखते हुए नलिनी ने धीरे से कहा,

"अच्युत! अच्युत! इधर देखो! मैं नलिनी हूँ..."

उसने उसकी बातें अनसुनी कर दीं; लेकिन वह उसी धीमी आवाज़ में उसे पुकारती रही। वही शब्द... मैं नलिनी हूँ! इधर देखो! वही शब्द बार-बार... उसे कैसा महसूस हो रहा होगा? उसे क्या दिखाई दे रहा होगा? उसे क्या सुनाई दे रहा होगा? कैसी-कैसी गंध उसके ऊपर छाई होगी? वह मन ही मन सोच रही थी। वह जानती थी कि यह काम उतना आसान नहीं है जितना दिखता है। यह भूसे के ढेर में सुई ढूंढने से भी आसान है - क्योंकि अगर समय हो तो आप घास का तिनका देख सकते हैं... क्योंकि एक बिंदु पर वे खत्म हो जाते हैं... लेकिन यहाँ संभावनाओं की कोई सीमा नहीं थी... उनका कोई अंत नहीं था... उसे एक ही उम्मीद थी। उसके और उसके बीच की भावनात्मक एकता, उनके घनिष्ठ संबंध से उनके दिलों में पैदा हुआ सहानुभूति का बंधन, यही एकमात्र चीज़ थी जो उसकी मदद कर सकती थी... भले ही अच्युत बाहर से पूरी तरह अकेला दिखाई दे रहा हो, लेकिन उसके मन के किसी गहरे स्तर पर, उसकी चेतना अवश्य ही अक्षुण्ण होगी... असली अच्युत, जो वहाँ फंसा हुआ है, मदद के लिए तड़प रहा होगा... उसकी प्रार्थना का उत्तर शायद वहीं से मिलेगा... यदि वह बंधन अभी भी वहाँ बरकरार है, तो उसे आधार बनाकर वह इस अराजकता के बीच धीरे-धीरे अपने अच्युत तक पहुँच पाएगी...

उसे पूरा यकीन था कि अच्युत इस भारी, अभेद्य आवरण के नीचे फंसा हुआ है। उसने अच्युत की मदद करना अपना एकमात्र कर्तव्य समझा। इस रास्ते पर किसी भी तरह के खतरे का ख्याल उसके मन में एक पल के लिए भी नहीं आया। वह मदद के लिए हर जगह गई थी और निराश होकर लौटी थी। अगर कुछ किया जा सकता था, तो उसे खुद ही करना होगा। क्योंकि अब कोई और नहीं था... और अगर किसी डूबते हुए व्यक्ति को बचाना हो, तो उसे खुद पानी में कूदना पड़ता है... किनारे पर खड़े रहकर भला कोई क्या मदद कर सकता है?

"अच्युत! इधर देखो! मैं नलिनी हूँ!" वह उसी धीमी आवाज़ में कह रही थी। दोहराव एक बहुत ही कारगर हथियार है। इसके प्रभाव से, जो लोग 'मैं हूँ' कहते हैं, उनकी साँसें थम जाती हैं; विरोध समाप्त हो जाता है; दाने खिसकने लगते हैं, भीतर का सार प्रकट हो जाता है...

"अच्युत! ये देखो! मैं नलिनी हूँ! अच्युत..." क्या उसमें कोई बदलाव आया था? क्या उसके हाथ, जो खाट पर ढीले पड़े थे, थोड़े हिल रहे थे? क्या उसकी उंगलियाँ खुल और बंद हो रही थीं? क्या उसकी साँसें थोड़ी भारी हो रही थीं? क्या उसकी गर्दन अपने आप हिलने लगी थी? पहले तो शक हुआ, लेकिन फिर कोई शक नहीं रहा। वो सारी हरकतें असलियत में दिख रही थीं। जैसे-जैसे उसकी गर्दन हिली, उसकी आँखें भी चौड़ी हो गईं और गर्दन के साथ-साथ उसकी नज़र भी कमरे की छत पर

घूमने लगी... उसकी नज़र का दायरा बढ़ता गया और अब उसकी नज़र नलिनी के चेहरे पर घूमने लगी... हर बार जब उसकी नज़र उसके शरीर पर जाती, तो नलिनी को लगता जैसे कोई गर्म हवा उसके शरीर से गुज़री हो... क्या यह उसकी बार-बार की अपील का नतीजा था?... अगर ऐसा है, तो इसका मतलब वही था... किसी अनजान तरीके से, वह उसके दिमाग से जुड़ गई थी... जैसे किसी धागे ने दोनों के दिमाग को बांध दिया हो... लेकिन-लेकिन... उसके दिमाग में एक भयानक ख्याल आया... यह धागा, यह बंधन, यह फंदा, उसने उसे उसके चंगुल से बाहर निकालने की योजना बनाई थी... लेकिन अगर उसकी ताकत काफी नहीं हुई... तो वह उस धागे से उसकी ओर खिंच जाएगी... यह जाएगा, नहीं, यह जा रहा था... अभी, इस पल, यह जा रहा था... उसकी गर्म, जलती हुई नज़र, जो एक गर्म हवा की तरह लग रही थी, भावनात्मक पतन की ओर पहला कदम थी... बाहर से आने वाली संवेदनाएँ उस तक इतने विकृत रूप में पहुँचती थीं। वहाँ थे... उसकी निगाहें भट्टी की गर्म किरणों सी लगतीं... एक आवाज काँटेदार टहनी की तरह शरीर को चुभती... कुछ भी संभव होता... और फिर अगर ये आपसी संचार संकेत विफल हो गए, तो बाहरी दुनिया से उसका संबंध टूट जाएगा... इन गलतफहमियों की एक अभेद्य दीवार उसके चारों ओर खड़ी हो जाएगी और वह हमेशा के लिए उस कारागार में बंद हो जाएगी... ठीक वैसे ही जैसे अच्युत अब हो गया था! (यह विचार उसके दिमाग में नहीं आया कि उसके साथ जो हो रहा था, उसके लिए वह इतना तर्कसंगत स्पष्टीकरण कैसे लेकर आया!) तो उसे क्या करना चाहिए? क्या उसे अपना प्रयास जारी रखना चाहिए या पीछे हट जाना चाहिए? अच्युत की आँखें अभी भी छत से उस पर घूम रही थीं। वह अभी भी उन आँखों की गर्मी महसूस कर सकती थी। जो बंधन स्थापित हुआ था, वह अभी भी बरकरार था... उस क्षण नलिनी ने एक असामान्य रूप से साहसी निर्णय लिया। एक पल के लिए उसका मन एक मध्यमवर्गीय, सुसंस्कृत महिला के रूप में अपनी भूमिका को भूल गया था; और पति-पत्नी का रिश्ता बहुत ऊँचे स्तर पर पहुँच गया था... उसे आगे आने वाले खतरों का अंदाज़ा नहीं था; उसकी ताकत कम होने वाली थी; लेकिन उसकी कोशिशें कम नहीं होंगी; उसकी हिम्मत कभी कम नहीं होगी; उस पल, उसका दिल सचमुच अच्युत के लिए बिना शर्त प्यार से भर गया, वह उसकी ओर मुड़ी और उसे छूते हुए कहा,

"अच्युत! इधर देखो! मैं नलिनी हूँ!"

अच्युत ने उसकी ओर देखा...

नलिनी को ऐसा लगा जैसे दरवाजे से हवा का एक तेज़ झोंका आया हो और कुछ पलों के लिए उसकी सांस रुक गई हो, उसकी जान खतरे में थी। वह निगाह साधारण नहीं थी। उस निगाह ने अपने

साथ एक अनोखी, अपरिचित दुनिया ला दी थी। और वह एहसास रोज़मर्रा के एहसास से कई गुना ज़्यादा तीव्र था। जैसे सर्चलाइट की तेज़ रोशनी में एक छोटी सी बत्ती बुझ जाती है, वैसे ही उसकी रोज़मर्रा की दुनिया इस नए एहसास के सामने फीकी पड़ रही थी। उसे समुद्र तट के पास पानी में पाँच कदम चलना था और नीचे से आती एक अदृश्य धारा उसके पैरों को खींचकर उसे गहरे पानी में ले जाती।

आस-पास का कमरा अँधेरा था। दीवारें किसी नाटक के पर्दों की तरह फड़फड़ा रही थीं, मानो किसी काली हवा में फँसी हों। उन पर्दों के पीछे कुछ था। वह भयानक था। उसकी एक धुंधली सी झलक दिखाई दे रही थी... लेकिन तभी ये दीवारें टूटकर हवा में दूर जा गिरेंगी... और फिर हम देखेंगे कि उनके पीछे क्या था... एक भयानक सच्चाई, रोज़मर्रा की दुनिया के अंदर या पीछे, हमेशा नज़रों से ओझल, सामने आ जाएगी... अब वह ज़्यादा देर तक आज़ाद नहीं रह पाएगी - जैसे-जैसे बत्तियाँ बुझती गईं, उसकी इंद्रियाँ एक-एक करके बुझती गईं... गंध चली गई, स्पर्श चला गया, आवाज़ चली गई, अब तो दृष्टि भी जाने वाली थी... बाहरी दुनिया से उसका एकमात्र संपर्क टूटने वाला था... लेकिन ठीक आखिरी क्षण में (उसे इसका पता नहीं था) वह बच गई। कमरे के दरवाज़े से किसी के तेज़ थपथपाने की आवाज़ आ रही थी। अगर पाँच-सात बार थपथपाने के बाद आवाज़ रुक जाती, तो पाइप में फिर से पानी का बहाव आ जाता; लेकिन आवाज़ नहीं रुकी, बल्कि तेज़ हो गई। हर एक स्पर्श के साथ, मन पर नियंत्रण कम होता जा रहा था, और सामान्य दुनिया अधिक से अधिक स्पष्ट होती जा रही थी। अंततः, उसके आसपास की परिचितता की गहराई स्थिर हो गई। फिर मस्तिष्क ने शरीर पर नियंत्रण कर लिया।

"हाँ! हाँ! आओ!" उसने ज़ोर से कहा और दरवाज़ा खोलने के लिए उठी - या यूँ कहें कि उठने की कोशिश की। उसके हाथ-पैर सुन्न हो गए थे, कमरा उसके चारों ओर घूम रहा था। उसने अपनी आँखें कसकर बंद कर लीं। उसने पलंग के पाइप को अपने हाथों में कसकर पकड़ लिया... फिर उसकी नज़रों से ओझल चक्कर गायब हो गया। वह दीवार का सहारा लेकर दरवाज़े तक गई और उसे खोल दिया।

दरवाजे के बाहर तीस साल का एक अजनबी युवक खड़ा था। वह अपने चेहरे पर थोड़ी अधीरता और चिंता के भाव लिए दरवाजे की ओर देख रहा था।

"अच्युत? क्या अच्युत घर में है?"

"उनकी तबीयत ठीक नहीं है... वे अंदर सो रहे हैं..."

"क्या आप उनकी पत्नी हैं? भाभी, क्या आप अंदर आ सकती हैं? मुझे आपसे कुछ कहना है।"

नलिनी को उसके बारे में अच्छा महसूस हुआ।
"अंदर आइए..." उसने पीछे हटते हुए कहा। वह अंदर आ गया।
"मैं गोपाल उपाध्याय हूँ - गोपाल उपाध्याय - और मैं अच्युत हूँ। मैं और अच्युत एक ही दफ्तर में काम करते हैं। मैं छुट्टी पर था। जब मैं लौटा, तो मुझे पता चला कि अच्युत की तबीयत ठीक नहीं है... आप आए और चले गए। उनके साले भी आए और चले गए... अब उनकी तबीयत कैसी है? क्या मैं उनसे मिल सकता हूँ?"
नलिनी कुर्सी पर बैठी हुई बोलीं, "उनकी सेहत बिल्कुल भी अच्छी नहीं है।"
"वे तुम्हें जानना नहीं चाहते। वे किसी को नहीं जानते। मुझे भी नहीं!" उसका गला भर आया। उसकी आँखों में आँसू भर आए। गोपाल के सहानुभूति भरे चार सरल शब्दों ने उसके मन के बंधन तोड़ दिए थे। गोपाल बेचैनी से इधर-उधर हिल रहा था। वह उसके लिए बिलकुल अजनबी था। शब्दों से सांत्वना देने के अलावा वह क्या कर सकता था?
"भाभी! मुझे उसे देखने दीजिए! शायद वह मुझे पहचान ले!"
नलिनी ने बिना कुछ कहे अपने कमरे की ओर इशारा किया। गोपाल दरवाजे से अंदर आया, लेकिन दो कदम चलने के बाद ही वह लड़खड़ा गया। आगे बढ़ने की उसकी हिम्मत नहीं हुई। वह कमरे से बाहर निकलकर नलिनी के सामने रखी तह वाली कुर्सी पर बैठ गया।
"भाभी, यह कब हुआ?"
"24 नवंबर" वह तारीख थी जो जलती हुई कलम से मेरे दिमाग पर अंकित हो गई थी।
क्या आप कृपया थोड़ा समझा सकते हैं?
"कहने को कुछ नहीं है। उस दिन दफ्तर से आए सभी लोग यही सोच रहे थे। वे बिस्तर पर ही पड़े रहे। शुरुआत में थोड़ी समझदारी थी। अगर आप उन्हें दस बार समझाएंगे, तो वे समझ जाएंगे... लेकिन अब वह समझदारी कम होती जा रही है, और अब तो बस एक सपना बनकर रह गया है।"
आपने क्या उपचार किया?
"मैंने उसे यहाँ एक साधारण डॉक्टर को दिखाया। उसने कहा कि उसके शरीर में कोई खराबी नहीं है। फिर मैं उसे मुंबई के एक बड़े डॉक्टर के पास ले गया। वहाँ एक बड़े डॉक्टर ने मानसिक अस्पताल में उसकी जाँच की। उन्होंने उसे बिजली के झटके देना शुरू कर दिया। मुझे उस बेचारे के बारे में कुछ समझ नहीं आता... लेकिन मुझे लगा कि झटके उसे आराम देने के बजाय उसकी हालत और खराब कर रहे थे... और क्या मैं आपको सच बताऊँ? हम इतना महंगा इलाज कैसे करवा सकते हैं? मैं आज दोपहर ही मुंबई से लौटा हूँ।"

जीवन की इस घोर तबाही को शब्दों में बयां करना कितना मुश्किल है!
"बहन, जब से मुझे पता चला है कि अच्युत की तबीयत खराब है, मैं हर रोज यहाँ आ रही हूँ। अब मुझे लगता है कि अगर मैं छुट्टी पर न गई होती तो बेहतर होता, मैं आपकी मदद कर सकती थी..."
"जो कहना चाहते हो, उसे स्पष्ट रूप से कहो!"
"बहन, अच्युत की बीमारी शारीरिक नहीं है, न ही चिकित्सकीय है, वह किसी दवा या सदमे से ठीक नहीं होगा।"
नलिनी को गोपाल की बातों का मतलब समझ नहीं आया। सच में, उसे कुछ समझ नहीं आया। शारीरिक बीमारी नहीं? मतलब मानसिक बीमारी? मतलब किसी तरह का पागलपन, लेकिन इतने लंबे समय तक और इतने महंगे खर्च पर सिर्फ उसी का इलाज किया गया? गोपाल क्या कहना चाह रहा था? क्या पिछले दो हफ्तों से उसका संघर्ष व्यर्थ गया? क्यों?
"बहन, अच्युत को वैसी कोई बीमारी नहीं है जैसी हम आमतौर पर समझते हैं - उसकी स्थिति थोड़ी अलग है।"
मुझे आपकी एक भी बात समझ नहीं आ रही है!
मैं आपको बता देता, लेकिन मुझे यह कहने में थोड़ी शर्म आ रही है...

□□□

दफ्तर में लंच ब्रेक के दौरान यह बात उठी। पीछे से कोई नहीं बता सकता कि बातचीत में कोई विषय कैसे शुरू होता है। कभी ट्रेन में कुछ सुन लेते हैं... कभी बस में; कभी अखबार में कोई खबर होती है; कभी कोई घरेलू या विदेशी फिल्म देख रहे होते हैं; कभी कोई कहानी या उपन्यास। अच्युत, गोपाल और दो-तीन अन्य लोग एक डिब्बा लेकर आते। खाने का आदान-प्रदान होता और बातचीत जारी रहती। उस दिन जंतर-मंतर, करणी, भानमती और शेतुक का मुद्दा उठा। हर कोई अपने अनुभव बताता है; लेकिन यह कहना बहुत मुश्किल है कि उसमें कितना सच है, कितना बढ़ा-चढ़ाकर बताया गया है और कितना मनगढ़ंत है।

पाटिल या थोरात, गोपाल को अब याद नहीं आ रहा था... लेकिन उनमें से किसी एक ने काली योगिनी के बारे में बताया था। उसका अनुभव भी वैसा ही था जैसा 'मेरे एक बहुत करीबी दोस्त ने मुझे बताया था...', लेकिन गोपाल को उसमें कुछ अलग लगा। कहने का मतलब यह था कि वर्णनकर्ता घटना को बढ़ा-चढ़ाकर बताने की कोशिश नहीं कर रहा था; बल्कि वर्णन बहुत धीमा और संक्षिप्त था। मानो कुछ बातें दिन दहाड़े भी बताने लायक न हों। वर्णन इतना रोमांचक और दिलचस्प था कि कुछ लोग तो वहाँ जाने के लिए विशेष रूप से ललचाते।

गोपाल को एक बात का बिल्कुल भी अंदाजा नहीं था। अच्युत का मन धीरे-धीरे बदल रहा था। यह बदलाव बहुत गहरा था। कोई इसे समझ नहीं पा रहा था। नौकरी की अधिकतम वेतन सीमा, बढ़ती महंगाई दर, बचत पर दबाव, कल एक-दो बच्चे होने के बाद खर्चों में होने वाली बढ़ोतरी - इन सब बातों का हिसाब लगाने के बाद जो तस्वीर उसके सामने खड़ी थी, वह संतोषजनक नहीं थी। उसे जीवन में कभी किसी चीज की कमी नहीं होगी, लेकिन वह कभी भी औसत मध्यम वर्ग के स्तर से ऊपर नहीं उठ पाएगा।

अच्युत को अपनी बहन से ईर्ष्या नहीं थी; बल्कि उसके और उसकी दुनिया के बीच का अंतर उसे स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा था। और यह स्पष्ट था कि यह अंतर हर गुजरते वर्ष के साथ और भी बढ़ता जाएगा। अच्युत पूरी तरह स्वार्थी नहीं था; वह नलिनी की पीड़ा को समझ सकता था - वह भी सुख-सुविधाओं, स्वास्थ्य, समृद्धि और खुशहाली से भरा जीवन जीना चाहती थी।

बेशक, महत्वाकांक्षा कोई दोष नहीं है। परिवर्तन की इच्छा ही सुधार की जननी है। आत्मसंतुष्टि बहुत खतरनाक होती है। लेकिन साधन उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितना कि लक्ष्य। कुछ लोग अपनी महत्वाकांक्षा को पूरा करने के लिए कड़ी मेहनत का रास्ता चुनते हैं। कुछ नए पेशे चुनते हैं, कुछ

पलायन करते हैं - लेकिन अच्युत द्वारा चुना गया मार्ग देखने में आसान लग रहा था; पर वह आसानी भ्रामक थी।

अच्युत काली योगिनी से मिलने गये।

अच्युत ने धीरे-धीरे उस मित्र से (जितना वह जानता था) जानकारी जुटाई, जिसने पहले दिन की बातचीत में उसे काली योगिनी के बारे में बताया था। सबसे महत्वपूर्ण बात उस मित्र के मित्र का नाम और पता था। रविवार की सुबह (यदि घर पर खरीदारी या अन्य कोई काम न हो), अच्युत दो से ढाई घंटे टहलने जाता था। इसमें कुछ भी नया नहीं था, और नलिनी ने उसे रोकने की ज़हमत भी नहीं उठाई। मित्र के मित्र का नाम परांदे था।

पता ढूंढने में काफी मशक्कत करनी पड़ी। क्योंकि इलाका इतना विकसित हो चुका था कि सब कुछ नया था। पता एक सहकारी समिति में छत्तीस सौ फीट के भूखंड पर बने एक मंजिला मकान का था। जब अच्युत ने घंटी बजाई, तो एक पैंतीस वर्षीय महिला (संभवतः श्रीमती परांदे) ने दरवाजा खोला। यद्यपि वह अजनबी था, फिर भी उसे उनका स्वागत बहुत ठंडा लगा। उन्होंने अच्युत को अंदर बरामदे में आने के लिए आमंत्रित नहीं किया। उन्होंने दरवाजे से ही पूछा,

"आपका कार्य क्या है?"

"क्या यहाँ कोई परांडे हैं? अगर होते, तो मुझे उनसे मिलना पड़ता।"

क्या आप उनकी कंपनी में काम करते हैं?

"नहीं, नहीं। मैं उन्हें जानता भी नहीं।"

"लेकिन वह काम क्या था?"

मैं आपसे अकेले में बात करना चाहता था।

महिला की आंखों में अचानक बेचैनी और संदेह के भाव दिखाई दिए।

"अगर आप मुझे अपने काम के बारे में थोड़ा बता दें, तो मैं उनसे पूछूंगा - उन्हें क्या हुआ है? उनकी सेहत पहले खराब हो गई थी। अब थोड़ी सुधार हुआ है। लेकिन डॉक्टर ने मुझे अपना ख्याल रखने की सलाह दी है।"

बरामदे में एक खिड़की थी जो अंदर के कमरे में खुलती थी। खिड़की का पर्दा थोड़ा सा हिला। अच्युत ने देखा कि कोई पर्दे की दरार से बाहर देख रहा है। अच्युत को केवल आँखें और चेहरे का कुछ हिस्सा ही दिखाई दिया। किसी ने धीमी आवाज़ में पूछा,

"कौन है, जानकी?"

"कोई आपके पास आता है - लेकिन वे आपको अपना नाम नहीं बताते, वे यह भी नहीं बताते कि वे क्या काम करते हैं - वे कहते हैं कि वे अकेले में बात करना चाहते हैं..."

“तो फिर उन्हें अंदर आने दो – इधर आओ!” आखिरी शब्दों पर आवाज़ तेज़ हो गई थी। जानकीबाई दरवाजे से हट गईं, लेकिन वह अच्युत को बहुत गुस्से से देख रही थीं। अच्युत बरामदे के दरवाजे से अंदर आया। कमरा बिल्कुल अंधेरा था। तीनों खिड़कियों पर काले पर्दे लगे थे।

“आओ, आओ, बैठो...” कोने से एक आवाज़ आई। दोनों खिड़कियों से दूर, कोने में, परांदे (ज़रूर वही होगा!) एक कुर्सी पर बैठा था। उसने गले तक शॉल ओढ़ रखी थी। उसका चेहरा ही दिखाई दे रहा था, वो भी हल्की धुंधली रोशनी में। अच्युत ने एक पतले, सीधे चेहरे और बड़ी-बड़ी आँखों को देखा।

"इस दर्द की वजह से मेरी आंखें तेज रोशनी बर्दाश्त नहीं कर पा रही हैं। इसलिए मैंने पर्दे थोड़े से खींच लिए हैं।" परांदे अब बहुत धीमी आवाज में बोल रही थीं।

"आपका कार्य क्या है?"

"परंदे, मुझे आपसे एक पता चाहिए था। थोरात नाम का आपका एक दोस्त मेरे दफ्तर में है..."

"थोराट में?!" उस विस्मय में आश्चर्य था, यहाँ तक कि थोड़ा डर भी।

"आपके मन में कौन सा पता है जिसकी मुझे ज़रूरत है?"

"हाँ, यह आ गया है।" अजनबी ने अब अपना सिर घुमा लिया था। अब उसका चेहरा एकदम काला पड़ गया था।

"बेशक, मैं ज़िद नहीं कर रहा हूँ, मैं बस पता पूछ रहा हूँ और अगर आप मुझे उस यात्रा के बारे में कुछ बता सकें तो मैं आभारी रहूँगा..."

क्या कोने से हँसी की आवाज़ आ रही थी? कैसी आवाज़? हँसी? लेकिन इस हँसी में खुशी का कोई नामोनिशान नहीं था! कहीं ये परंद बीमार तो नहीं थे? परंदों ने अपने सिर नीचे झुका रखे थे - धुंधले अँधेरे में उनके कंधे ऊपर-नीचे होते दिख रहे थे। परंद हँस नहीं रहे थे - वे आपस में कुछ बुदबुदा रहे थे।

आपने यह नाम कब सुना? यह बेतुकी बात आपके दिमाग में कैसे आई? मुझे आपको वह पता देने की बिल्कुल भी इच्छा नहीं है! लेकिन मुझ पर यह दायित्व है कि जो भी मुझसे पता पूछे, मैं उसे बता दूं... मैं आपको बताता हूं... रास्ता याद रखना...

रास्ता गांव से बाहर जाता था। आपको कब्रिस्तान की ओर जाने वाले पुल से होकर जाना पड़ता था और फिर नदी के किनारे-किनारे एक फर्लांग चलना पड़ता था। वहां एक प्राचीन खंडहर मंदिर और

एक पुराना सराय था। मंदिर के पीछे एक पुरानी जर्जर इमारत थी। यही पता था। वहां रात आठ बजे के बाद ही मिलने की संभावना थी।
"तुम चाहे जो भी हो -" परांदे कह रहा था, "लेकिन मेरी बात सुनो - वहाँ मत जाओ! तुम्हें पछतावा होगा! मुझे पता है तुम वहाँ नहीं रुकोगे - कम से कम कुछ मत माँगो - अगर माँगो भी तो कीमत पर राज़ी मत होना! सौदा बहुत महंगा है!" उसे हर शब्द बड़ी मुश्किल से बोलना पड़ा।
"ओह, मेरी इकलौती पोती, जो सवा साल की थी, चली गई!" फिर वह दोनों हाथों से उसका गला, छाती और पेट सहलाने लगा। वह अपनी गर्दन ज़ोर-ज़ोर से हिला रहा था। वह ज़ोर-ज़ोर से हांफ रहा था। जानकीबाई पानी का गिलास लेकर आई। परंद्या ने पानी के दो घूंट लिए। उसने गिलास का पानी अपनी आँखों पर लगाया। वह थोड़ा शांत लग रहा था। जानकीबाई अच्युत की ओर मुड़ी और गुस्से से बोली,
"क्या तुमने ऐसा कहा? जितनी जल्दी जाओगे उतना अच्छा होगा!"
अच्युत कई सवाल पूछना चाहता था, लेकिन ज़ाहिर है यह नामुमकिन था। वह बाहरी दरवाजे पर पाँच सेकंड के लिए रुक गया।
"जानकीबाई, मेरा विश्वास करो, मुझे इस बारे में कुछ भी पता नहीं था - अन्यथा मैं परंद्या परिवार को कभी परेशान नहीं करती।"
“सब यही कहते हैं!” उसने गुस्से से कहा; लेकिन उन्होंने दरवाज़ा ज़ोर से बंद नहीं किया। वह दरवाज़े पर खड़ी रही। शायद ये बातें उसके मन में लंबे समय से दबी हुई थीं। और ये मामला इतना दबा हुआ था कि सड़ता चला गया, ज़हरीला हो गया; कोई भी इसे कभी न कभी बाहर फेंकने के बारे में सोचेगा - शायद वह भी ऐसे ही मौके की तलाश में थी। वह इतनी प्रभावशाली ढंग से बोल रही थी, यह बात सच थी।
"ओह, उन्होंने मुझसे एक शब्द भी नहीं कहा - लेकिन वे रात को सो नहीं पाते, चीखते रहते हैं... अब तो याद करके भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं... नहीं! नहीं! मुझे यह नहीं चाहिए! इसे वापस ले लो! इसे वापस ले लो! वे ऐसे ही रोते जा रहे हैं... उनके दिमाग पर कुछ चढ़ गया है... मेरी डेढ़ साल की पोती निमोनिया से मर गई... अब हमें इस बात का दुख क्यों नहीं हो रहा? लेकिन यही तो ज़िंदगी है... कड़वे के साथ मीठा भी सहना पड़ता है... लेकिन कोई ऐसा पागल कैसे हो सकता है? ठीक है, वे अपनी पोती के बहुत करीब थे। लेकिन वे उसकी जान अपने साथ ले गए और किसी तरह, उसकी जान ले ली! वे कुछ भी सुनने को तैयार नहीं हैं! हम, घरवाले, गलती से भी इस विषय को नहीं उठाते - अगर आप कहें कि बाहर वालों को दरवाजे से वापस भेज दो, तो वे वह भी नहीं मानेंगे! वे कहते हैं, क्या एक

जान काफी नहीं है? अगर कोई आए, तो उसे अंदर बुलाते रहो... जब घंटी बजे, तो तुरंत खिड़की से बाहर देखो! और अब दो दिनों से वे घर में इतना शोर मचा रहे हैं।" घर में कुत्ता हमारी हालत खराब कर रहा है! ऐसा लग रहा है जैसे वे उन दो खिड़कियों के बीच कोने की ओर मुंह करके बैठे हैं... नहीं! नहीं! अभी नहीं! फिर कभी नहीं! वे कह रहे हैं..."

"लेकिन आप अच्छी चिकित्सीय सलाह क्यों नहीं लेते?"

"अरे, सब कुछ खत्म हो गया! पैसा पानी की तरह बह गया! कोई सुधार नहीं हुआ... मेरी सेहत तो और बिगड़ गई! मुझे ऐसा लगने लगा कि अब बस बिस्तर पर लेटना ही अच्छा लगता है, जो पहले बहुत शांत रहता था..."

"लेकिन अगर उन्हें चोट लग जाए तो क्या होगा? डॉक्टर क्या कहेंगे?"

"वे कुछ चौंकाने वाली बातें कहते हैं... लेकिन अगर वे सदमे के कारण ऐसा कहते हैं, तो फिर और भी ज्यादा चौंकाने वाली बात क्या है? लेकिन हम तो बस साधारण लोग हैं... पढ़े-लिखे लोगों के सामने वे क्या कहेंगे?"

"आपको किस बात ने चौंकाया, क्या कोई खास घटना घटी?"

"तुम तो एकदम घड़ी की तरह हो! एक-दो बार मैं किसी दोस्त के साथ एक रात के लिए कहीं गई थी, और बस यही बहाना था... कुछ जान-पहचान वाले मुझे ज्योतिषी के पास जाने, तांत्रिक के पास जाने, गाली देने की सलाह देते हैं... लेकिन देखो मेरे कान कितने तेज़ हैं! फुसफुसाहट भी हो, मैं इतना ज़ोर से चिल्लाने लगती हूँ कि कान में उंगलियाँ डालने का मन करता है! किसी को इस तरह आंकना मतलब हाथ-पैर बंधे होने जैसा है - जैसे किसी गाय को! हम जैसे गोरे लोगों को कैसे काबू में रखा जा सकता है! क्या हम जन्म के समय फिर से लोगों की आँखों में देख सकते हैं? और उन लोगों का क्या जो हमें ये सब बताते हैं! अगर हम कल पागल हो गए, तो क्या उनमें से कोई आकर हमारी गलती सुधारेगा!"

जानकीबाई बहुत ही बेबस थीं!

"लोग कहते हैं कि गाँव छोड़ दो - यह मेरे नसीब में नहीं था, इस छोटे से घर में सिमट गया - मेरे सिर पर कर्ज का पहाड़ है... अब बताओ मैं कहाँ जाऊँ! और अपना पेट कैसे भरूँ? भीख माँगकर?" वह हताशा में बोल रही थी... उसके सवाल और उसके संदेह - सब उसके होठों पर ही अटके रह गए थे। इसमें कोई शक नहीं था कि परंद्या की वास्तविकता (जो उसने देखा और समझा था) विचारोत्तेजक थी। उसके कुछ कथन बेहद संकेतपूर्ण और डरावने थे। परंद्या के मन में छिपी इच्छा का पता लगाना असंभव था - लेकिन कोई न कोई समझौता हो चुका था; उसकी पोती की भी मृत्यु हो गई थी।

जानकीबाई कह रही थी कि यह शारीरिक बीमारी के कारण हुआ। परंद्या कह रहा था कि उसकी पोती की मृत्यु हो गई... इनमें से कौन सा कथन सत्य था, कौन सा असत्य? ये एक ही सिक्के के दो पहलू क्यों थे? इसके अलावा, परंद्या पर कुछ दायित्व भी थे। (वे कह रहे थे) कि पूछताछ के लिए आने वाले किसी भी व्यक्ति को पता बताना होगा... यानी, अगर यह घटना उस दुर्भाग्यपूर्ण मृत्यु पर समाप्त नहीं होती! यह उसके सिर पर लटकती तलवार की तरह था! बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी - परंद्या ने चेतावनी दी थी... लेकिन उसके शब्दों पर कितना भरोसा किया जा सकता था? यह किसी विक्षिप्त व्यक्ति की निरर्थक बकवास भी हो सकती थी।

केवल दो बातें निर्विवाद थीं। उन्होंने काली जादूगरनी का पता दिया था - जिसका अर्थ था कि उसका अस्तित्व वास्तविक था, वह किसी के मनगढ़ंत या काल्पनिक पात्र नहीं थी; और वे वहाँ एक उद्देश्य के साथ गए थे... कोई समझौता हुआ था... जिसका अर्थ था कि उन्हें आश्वस्त होना चाहिए था कि उनका उद्देश्य पूरा हो जाएगा।

जो मन में आए, वो क्यों न किया जाए? लेकिन कोई भी तुरंत फैसला लेने से पहले, उस जगह का दौरा करने में क्या हर्ज था? दौरा करना कोई आत्मसमर्पण तो नहीं था... उसे सौदा मानने के लिए मजबूर तो नहीं किया गया था, था क्या? कोई दूसरा विकल्प भी हो सकता था... वह अपना शरीर, अपनी आत्मा दांव पर लगा सकता था... लेकिन वह किसी और को कोई रियायत नहीं देता। सिर्फ एक बार जाकर देखने में क्या हर्ज था? शायद उन बदमाशों ने सौदे की अपनी शर्त पूरी नहीं की थी... भले ही भतीजी की मौत सौदे का हिस्सा न हो - फिर भी हर बात को बुरा मानने का क्या कारण था?

यह सच था कि अनजाने में ही उसके मन ने वहाँ जाने का फैसला कर लिया था। ये सभी विचार उसके लिए सहारा बन रहे थे - शायद वह खुद को यह समझाने की कोशिश कर रहा था कि वह जो करने जा रहा है वह खतरनाक नहीं है, गलत नहीं है।

नलिनी को कुछ बताए बिना घर से निकलना नामुमकिन था।

“हमने कभी-कभार किसी दोस्त के साथ बाहर घूमने का फैसला किया है।” उसने उससे कहा, “हम नदी के पास रहते हैं - हम पचास लोग हैं... इसलिए अगर थोड़ी देर हो जाए तो चिंता मत करना...” वह उसे धोखा दे रहा था, लेकिन उसकी भलाई के लिए। उसे जितना कम पता चले, उतना ही अच्छा। ये बातें उसके जैसी लड़की के लिए नहीं थीं।

वह अभी नौसिखिया था, अनुभवहीन। उसे नहीं पता था कि क्या करना है और क्या नहीं। उसे यह भी नहीं पता था कि अमावस्या की रात है। आजकल पढ़े-लिखे लोग तिथियों, समय, नक्षत्रों, राशियों, घटिकाओं और शुभ मुहूर्तों पर ध्यान क्यों नहीं देते? और मान लीजिए कि उसने अखबार में दो

पंक्तियाँ पढ़ भी लीं... तो वे उसके लिए मात्र अर्थहीन संख्याएँ और अक्षर ही रह जाएँगी। अगर उसे इसके बारे में थोड़ी भी जानकारी होती, तो वह उस रात और उस समय से पूरी सावधानी से बचता।
पुल पर गांव की रोशनी मंद पड़ रही थी। आखिरी दीपक नदी की ओर मुख किए खड़ा था। पुल के नीचे बहता पानी काला था - रोशनी बीच में उठती लहर पर पड़ रही थी। नदी पूरब-पश्चिम दिशा में बह रही थी - जैसे ही वह पुल के ऊपर से गुजरी, पश्चिमी हवा कपड़ों को फड़फड़ा रही थी, मानो शरीर में चुभने वाले कांटे हों।
पुल के उस पार की ज़मीन सरकारी थी, यानी वहाँ कोई आबादी नहीं थी। मवेशी चराने के लिए चुराए जाते थे; पेड़ काटने के लिए चुराए जाते थे; कुछ झोपड़ियाँ भी थीं; शराब बनाने के लिए चुराई जाती थी; और पेड़ों के घने आड़ में कुछ और भी गतिविधियाँ होती रहती थीं। सड़क उस अर्ध-जंगली जंगल से होकर गुज़रती थी।
तारों की रोशनी बहुत धुंधली थी। सड़क की सफेद पट्टी मुश्किल से दिखाई दे रही थी। बुलबुलें ज़ोर-ज़ोर से चहचहा रही थीं। वह बिल्कुल अकेला था। आसपास का माहौल उसके मन पर अनैच्छिक दबाव डाल रहा था। परांदे ने कहा था कि लगभग एक फर्लांग दूर एक पुराना मंदिर है - क्या उसने दूरी का गलत अनुमान लगाया था? क्या उसकी अपनी गणनाएँ गलत थीं? वह कितना चल चुका था? क्या उसने कम से कम सही रास्ता बताया था? क्या उसने अपने पागलपन में कोई गलती कर दी थी? जैसे ही ये विचार मन में आ रहे थे, पेड़ों की आखिरी कतार अचानक गायब हो गई। टूटे पत्थरों के विशाल प्रांगण में जर्जर मंदिर दिखाई दिया। यह कभी भगवान का मंदिर रहा होगा, लेकिन अब यह ढांचा खंडहर बन चुका था। इसकी पवित्रता समाप्त हो चुकी थी; अब मन को हिम्मत देने की कोई शक्ति नहीं थी; अब उन झुके हुए, ढह चुके, विशाल पत्थरों के ढेरों में भय छिपा था। मैं अंदर संकरे परिक्रमा मार्ग से या ऊँचे गुंबद के गूंजते कक्ष में कदम रखने की हिम्मत नहीं करता। जो पेड़ कभी सजावट के लिए लगाए गए थे, वे अब विशाल पेड़ बन चुके थे। उनकी जड़ों ने दो फुट मोटी दीवारों को नींव से उखाड़ दिया था। अब रात की हवा में सरसराते पत्ते एक-दूसरे को प्राचीन वैभव की यादें सुना रहे थे... मेरा मन उदास हो रहा था। उसने मंदिर का चक्कर लगाया। छत उखड़ी हुई सराय पीछे छूट गई। और दूर, जीर्ण-शीर्ण महल दिखाई देने लगा।
कभी महल के चारों ओर एक दीवार हुआ करती थी, लेकिन उसका अधिकांश भाग गिर चुका था। कुछ बदसूरत खंभे वहाँ खड़े थे, मानो गिरे हुए कीड़े के दांत हों। एक समय दीवार के अंदर एक बगीचा रहा होगा, फूलों या सब्जियों का बगीचा। अब चारों ओर जंगली घास और खरपतवार उग

आए थे। अच्युत के कदमों की आहट पर टिड्डे और पतंगे हवा में उड़ रहे थे, उनकी चहचहाहट चारों दिशाओं से आ रही थी।

उस जर्जर दीवार के पास खड़े होकर अच्युत महल या महल के खंडहरों को देख रहा था। चारों ओर अंधेरा छाया हुआ था। कहीं भी प्रकाश की एक किरण भी दिखाई नहीं दे रही थी। न ही कोई हलचल या आवाज़ सुनाई दे रही थी। उसने कल्पना की कि उसके जैसे दो-चार और साधक वहाँ एकत्रित होंगे। जब चार लोग साथ होते हैं, तो मन का धैर्य नहीं डगमगाता।

परंदा की बातें अब कुछ हद तक समझ में आने लगी थीं। फिर भी, वह मन बना लिए बिना वापस नहीं लौटेगा। वह जर्जर दीवार से होते हुए आंगन में दाखिल हुआ। वह पुराने महलों की दीवारों के पास पहुंचा। सामने की दीवार पर बंद खिड़कियों की कतारें थीं। उसकी आंखें अब धुंधली रोशनी की आदी हो चुकी थीं। हवा और बारिश से खिड़कियों के शीशे चटक गए थे। सभी खिड़कियों पर लाल रेखाओं से बड़े-बड़े फूल बने हुए थे। यह स्पष्ट नहीं था कि ये रक्षा के लिए थे या चुनौती के लिए। वह दीवार के चारों ओर घूमकर महल के सामने पहुंचा। वहां तीनों तरफ मेहराबों वाला एक खुला बरामदा था। सामने एक दरवाजा था। एक दरवाजा तो बहुत पहले ही गिर चुका था। दूसरा एक ही कब्ज़े पर किसी नशे में धुत व्यक्ति की तरह लटका हुआ था। अंदर घना अंधेरा था।

उसके हाथ में मशाल थी, लेकिन वह उसकी रोशनी अंदर नहीं आने देना चाहता था। कौन जाने, रोशनी क्या लेकर आएगी! वह एक पल के लिए बरामदे के बाहर खड़ा रहा, फिर दरवाजे की ओर चल पड़ा। घास और सूखे पत्ते पैरों से कुचले जा रहे थे - उनकी सरसराहट सुनाई दे रही थी। अब उसका आना किसी से छिपा नहीं रहेगा। (अगर महल में सच में कोई हो तो!)

अब और इंतज़ार करने का कोई मतलब नहीं था। उसका दिमाग तेज़ी से सोचने लगा था। ऐसी स्थिति में, समय ही उसका दुश्मन था। जैसे-जैसे पल बीतते गए, उसका साहस कम होता गया। हिम्मत जुटाकर उसने चार कदम बढ़ाए और बड़े दरवाजे से अंदर चला गया।

जैसे ही वह अंदर आया, ऊपर से एक तेज़ फड़फड़ाहट की आवाज़ आई। ज़रूर कोई तोता या चमगादड़ रहा होगा। चहचहाने की आवाज़ आ रही थी। पहले तो मेरी छाती ज़ोर से धड़कने लगी... लेकिन जैसे ही आसपास का वातावरण शांत हुआ, मेरी धड़कन धीमी हो गई।

फिर हँसी की आवाज़ आई। वह आवाज़ बड़े खाली कमरे में गूँज उठी। यह स्पष्ट नहीं था कि आवाज़ कहाँ से आ रही थी। उसने हाथ में पकड़ी मशाल घुमाई। तेज़ रोशनी की एक तलवार अंधेरे को चीरती हुई निकली। धूल के कणों ने हवा में प्रकाश का कोण बना दिया था। पहले तो प्रकाश का

गोला तेज़ी से चारों दिशाओं में घूम रहा था। लेकिन फिर उसकी गति धीमी हो गई। वह कमरे की दीवारों के साथ-साथ धीरे-धीरे बढ़ने लगा।

वह कमरा बहुत विशाल था। दीवारें रंगी हुई थीं, प्लास्टर उखड़ रहा था, टाइलें गिर रही थीं; दीवार में कई दरवाजे थे। टॉर्च की रोशनी दरवाजों से होकर अंदर आ रही थी... जब वह उस कतार से वापस लौट रहा था, तो हिस्का बैठ गया और रुक गया।

वह एक दरवाजे पर खड़ी थी। वह पल भर में वहां पहुंच गई थी।

उसका पूरा शरीर सिर से पैर तक एक गंदे काले कपड़े से ढका हुआ था। केवल उसकी आँखें ही खुली थीं। वे एक छोटी सी चौकोर दरार से उस पर टिकी हुई थीं। मशाल की रोशनी में वे हरे-लाल रंग की दिख रही थीं।

काला योगी!

वह मूर्ति की तरह स्थिर खड़ी थी। तो माघा की हंसी की आवाज किसकी थी, उसकी अपनी? या किसी कारीगर की?

उसके दिल का डर थोड़ा कम हो गया। वह एक साधारण महिला लग रही थी। उसका नाम काली जोगिन हो सकता है। लोगों ने उसे यही नाम दिया था; लेकिन उसकी इस ख्याति में कितनी सच्चाई थी? अगर उसके पास सचमुच वो तथाकथित शक्तियां थीं, तो फिर वो इतनी सुनसान जगह पर, गंदे कपड़ों में, अंधेरे में, भिखारी की तरह क्यों छिपी हुई थी?

एक पल पहले वह एक जर्जर, पुराने, रंगहीन कमरे में था... अगले ही पल उसके चारों ओर रोशनी की एक चमक दिखाई दी। छत पर पच्चीस बत्तियों वाला एक झूमर था। दीवार पर लगा झूमर उस रोशनी में चमक रहा था। नीचे कालीन बिछा था, गलीचे थे। दीवारों के सहारे गद्दे, तकिए और गद्दी रखी थीं। बीच में, एक बड़े अगरबत्तीदान से धुएं की एक धारा उठ रही थी... सामने के दरवाजे पर कांच का एक जगमगाता पर्दा था। उस पर्दे के पीछे वह खड़ी थी। कोमल हाथों की हथेलियों में एक सुंदर चेहरा... मुलायम मखमली त्वचा... आधी बंद आंखें... हल्के से खुले होंठ...

अगले ही पल वह फिर से अंधेरे में डूब गया... लेकिन अब उसके चारों ओर वह पुराना, जर्जर कमरा नहीं था। वह विशाल ढांचा भी समय के भार तले ढह गया था। चारों ओर पत्थरों का ढेर लग गया था। हर जगह खरपतवार और घास उग आई थी, जहाँ पहले दरवाजे का चौखट दिखाई देता था, जहाँ कुछ क्षण पहले कांच के मोतियों का झिलमिलाता पर्दा दिखाई देता था, अब वहाँ केवल उल्टे पड़े पत्थर थे... लेकिन फिर भी वह वहीं खड़ी रही।

गंदे कपड़े उसके सिर से नीचे फिसल गए थे।

अब वहां एक खोपड़ी थी जो अपने दांत दिखाते हुए मुस्कुरा रही थी।
उसके सभी सवालों के जवाब मिल चुके थे। टॉर्च की रोशनी में उसे कमरे में प्रवेश करते देखा गया। वह उसके पीछे कमरे में गया। कवर के नीचे एक दीपक जल रहा था। जैसे ही ऊपर का कवर हटाया गया, कमरे में तेज़ रोशनी फैल गई। बिजली के लैंप की तुलना में यह भले ही मंद थी, लेकिन घोर अंधेरे में रहने की आदी आँखों के लिए यह बहुत तेज़ लग रही थी। कमरे में दो पुरानी, बिना भुजाओं वाली, खस्ताहाल कुर्सियाँ थीं। वह एक कुर्सी पर बैठी थी। संकेत स्पष्ट था। वह दूसरी कुर्सी पर बैठना चाहता था।
अब वह उसे साफ़-साफ़ देख सकता था, लेकिन विवरण नहीं बदले थे। वह भद्दा काला वस्त्र अब भी उसके शरीर पर लिपटा हुआ था। वह अब भी केवल उसकी आँखें ही देख पा रहा था। वे आँखें जिनके पीछे एक शरारती, व्यंग्यात्मक मुस्कान छिपी थी। अब वे आँखें उस पर टिकी हुई थीं। वे आँखें उसके दिमाग में फंदे की तरह थीं। वह चाहकर भी उन्हें हटा नहीं सकता था।
"किसलिए आए हो?" आवाज़ सरल थी; उदासीन थी। उसमें भावनाओं का ज़रा सा भी अंश नहीं था। उसे एहसास हुआ कि मन में गढ़े हुए शब्दों को बोलना असंभव था। यह कोई ऐसी जगह नहीं थी जहाँ यूँ ही, जिज्ञासावश, या अंदाज़े लगाने के लिए आया जाए। अगर वह सचमुच किसी तीसरे व्यक्ति, विशेषज्ञ, जिज्ञासु पर्यवेक्षक के रूप में आया होता, तो शायद उसे महल में प्रवेश न मिलता; या, एक बार प्रवेश करने के बाद, बाहर निकलने का रास्ता उसके लिए बंद हो जाता।
"मैं अपने इस नीरस, उबाऊ, दयनीय और दुख भरे जीवन से थक गया हूँ..." ये शब्द किसी रिकॉर्ड की तरह गूंज रहे थे। वह सच्चाई जो मुझसे भी छिपी हुई थी।
"तुम्हें वो सब मिलेगा जो तुम चाहते हो।" उसकी आवाज़ में दृढ़ता थी। "क्या तुम वो कीमत चुकाने को तैयार हो जो मैं मांग रहा हूँ?"
नाम अपने आप में एक प्रश्न था। यह एक सच्चा कथन था। उसे बहुत बेचैनी हो रही थी कि वह पूछे, कीमत क्या है? सोचने के लिए कितना समय है? लेकिन उसकी ज़बान नहीं चल रही थी। कुछ पल असाधारण तनाव में बीत गए।
"तो अगर आपको मौन सहमति मिल गई है... तो अभी जाइए..."
दीपक ढका हुआ था। वह उसे देख रहा था। कमरा अंधेरा होने के बाद भी, उसकी आँखें उसे घूर रही थीं। वे छोटी और बड़ी होती जा रही थीं। और फिर धीरे-धीरे उसकी पलकें झुक गईं।
कमरे में कोई हलचल नहीं थी; लेकिन पचास सेकंड बाद जब उसने टॉर्च जलाई, तो देखा कि कमरा खाली था। उसके मन में एक साहसिक विचार आया। उसने सोचा, उसे वह लैंप लेना चाहिए, पूरे

महल की तलाशी लेनी चाहिए, सभी कमरों की, तहखानों की, अटारी की, हर चीज़ को ध्यान से देखना चाहिए। वह लैंप टेबल की ओर गया। टेबल पर एक पुरानी टोकरी पड़ी थी। उसने उसे उठाया; लेकिन उसके नीचे कुछ नहीं था। न लैंप, न कुछ और।

क्या वह दीपक अपने साथ ले गई थी? लेकिन बाती बुझने की गंध तो आनी चाहिए थी। उसे यकीन था कि ऐसी कोई गंध नहीं आई थी। उसने टॉर्च को अपने सामने रखी कुर्सी की ओर घुमाया। कुर्सी की सीट पर कई दिनों की धूल जमी हुई थी। वहाँ किसी के बैठने का कोई निशान नहीं था। फर्श की धूल भी नहीं हटी थी। दरवाजे से अंदर की ओर केवल उसके पैरों के निशान की दो पंक्तियाँ थीं। वह कमरे के दरवाजे से होते हुए केंद्रीय हॉल में आ गया।

हॉल की तीनों दीवारों पर कई दरवाजे थे। ये दरवाजे किसके लिए थे? अब खोजबीन करना नामुमकिन था। वह अकेला था, एक अंधेरी, डरावनी इमारत से घिरा हुआ। उसकी इंद्रियां अब भरोसेमंद नहीं थीं। अब, इस समय, कोई तीसरा व्यक्ति उसे खाली कुर्सी को घूरते हुए देख लेता! नहीं, अब खोजबीन करने का समय नहीं था।

वह हॉल के दरवाजे से निकलकर बरामदे में आ गया। वह आंगन से होते हुए खंडहर हो चुकी दीवार तक गया। मुड़कर उसने मशाल की रोशनी खंडहर हो चुके किले पर डाली।

वह बरामदे में बेंच के पास खड़ी थी, थोड़ा आगे की ओर झुकी हुई, उसे देख रही थी।

जब तक वह पुल तक नहीं पहुंचा, उसकी आत्मा में कोई जीवन नहीं था। वह आया और रात के अंधेरे में विलीन हो गया। मंदिर के पीछे एक विशाल बलूत का पेड़ था। बलूत की एक शाखा पर एक उल्लू बैठा था। उसकी कोयले जैसी दो आंखें अच्युत पर टिकी हुई थीं। जब तक वह बलूत के पेड़ का चक्कर लगाकर मंदिर की दीवार तक नहीं पहुंच गया, तब तक वे आंखें उसकी पीठ से नहीं हटीं।

जैसे ही वह मंदिर के पास से गुजरा, उसने नीले-काले रात के आकाश में उभरे गुंबद की ओर देखा, लेकिन अचानक अंदर लगी बड़ी घंटी से आवाज़ आने लगी, खान! खान! वह भागने ही वाला था, लेकिन आखिरी क्षण में उसने खुद को रोक लिया। यह ऐसी चीज़ नहीं थी जिसे इस तरह भागकर भगाया जा सके। उसे खतरे में होने का कोई कारण नहीं था। यह तो बस एक डांट थी। ठीक वैसी ही आवाज़ जैसी किसी जानवर को सड़क पर रोकने के लिए चाबुक चलाने पर आती है। विरोध करने से पहले ही यह उसके लिए एक चेतावनी थी।

बारह बज रहे थे जब उसने पुल पार किया। (हम इतनी देर से क्या कर रहे थे? यही सवाल उसके मन में खटक रहा था।) रास्ते में उसने अमृततुल्य में एक कप गर्म चाय पी। जब वह घर लौटा तब तक

एक बज चुका था। घंटी बजते ही नलिनी ने दरवाजा खोल दिया; लेकिन जब तक उसने कपड़े बदले, तब तक वह फिर से सो चुकी थी।

लेकिन नींद उससे इतनी दूर कभी नहीं गई थी। रात की सारी घटनाएँ उसकी आँखों के सामने बार-बार, हर एक विवरण के साथ, घूम रही थीं। परंद्या की हालत अब बार-बार उसके सामने आ रही थी। डॉक्टरों ने ज़रूर कहा होगा कि उसे मानसिक आघात लगा है - लेकिन अच्युत को यकीन था कि असलियत कुछ और ही थी। परंद्या किसी तरह मान गया था और सौदा उसी पर उल्टा पड़ गया था। उसने अपने लिए, अपने परिवार के लिए और दुनिया के लिए दौलत बनाई थी। वह ऐसा भाग्य नहीं चाहता था। असल में, उसे वहीं पर दृढ़ता से मना कर देना चाहिए था - लेकिन खुद को धोखा देने का क्या फायदा? वह माहौल, छोटी-छोटी संकेत देने वाली घटनाएँ, उसकी हालत को भयावह बना रही थीं। उसमें एक आकर्षण था (अगर सच में वहाँ कोई स्त्री थी!) - जैसे ही उसके मन में विचार आते, वह उसे महसूस कर लेती थी। उसमें एक तरह का जादू करने की शक्ति थी - उस प्रभाव में उसने अतीत और भविष्य में उस महल की क्षणिक अवस्था देखी थी; लेकिन उसने कहीं पढ़ा था कि ये शक्तियाँ एक मजबूत मन के प्रतिरोध के आगे बेअसर होती हैं।

अब सुबह हो चुकी थी। वह दिन के उजाले में उस वीरान महल को देखने जा रहा था। तभी वह सोचने लगा कि क्या करे।

नींद बहुत देर से आई, रात की चमत्कारिक घटनाओं की यादें उसके मन में बसी हुई थीं। उसकी नींद अक्सर अजीबोगरीब सपनों से टूटती थी; लेकिन जब वह सुबह उठा, तो उसे एक भी सपना याद नहीं रहा। एक पल के लिए, उसे उम्मीद हुई कि उस सुनसान महल का अनुभव भी एक सपना ही होगा, लेकिन ज़ाहिर है, यह उम्मीद ज़्यादा देर तक नहीं टिकी। सुबह के सारे काम उसने उदासीनता से निपटाए। नलिनी ने दोपहर का खाना तैयार किया। बाहर जाते समय उसने नलिनी से रात के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा।

गोपाल उससे रोज़ ऑफिस के बस स्टॉप पर मिलता था। गोपाल उसका सबसे करीबी दोस्त था। उसने गोपाल के पास बस उतार दी और उससे कहा कि उसे आने में थोड़ी देर हो रही है, इसलिए तब तक वह अपना ख्याल रख ले। ज़ाहिर है, इसमें कुछ नया नहीं था। बस के जाने के बाद, वह वापस मुड़ गया। उसने उसी रास्ते पर चलना शुरू किया जिस पर वह पिछली रात चला था।

अब वह पुल साइकिलों, स्कूटरों, पैदल यात्रियों और नदी किनारे लाए गए गायों और भैंसों से गुलजार था। धूल उड़ रही थी। तरह-तरह की गंधें आ रही थीं। बेघर लोग नदी के उथले किनारों पर नहा रहे थे। धोबियों के कपड़ों के ढेर लगे थे। रहस्य का नामोनिशान भी नहीं था।

उसने पुल पार किया। पहाड़ी की चोटी पर पहुँचते ही वह दाईं ओर मुड़ गया। इस क्षेत्र में कोई बस्ती या उपनिवेश नहीं था। कुछ खेत और बंगले थे, लेकिन उनका मुखड़ा एक फर्लांग तक फैले राष्ट्रीय राजमार्ग पर था। सड़क का यह उपेक्षित हिस्सा था।

सूरज की किरणें पेड़ों से छनकर आ रही थीं; मानो वे सुनहरे गोलों की तरह चल रहे हों। कुछ जगहों पर अंधेरा एकदम शांत था। जैसे-जैसे वह आगे बढ़ता गया, भीड़ का शोर धीरे-धीरे कम होता गया और अंत में गायब हो गया। पत्तों की सरसराहट और कीड़ों की चहचहाहट सुनाई दे रही थी। चारों ओर पेड़ ही पेड़ थे। आगे का रास्ता खाली था। अनजाने में ही उसकी नज़रें चारों ओर भटक रही थीं। अब उसे पिछली रात के अपने साहस पर हैरानी हो रही थी।

खंडहर मंदिर सामने आ गया। अब उसका असली स्वरूप प्रकट हो रहा था। दीपों की मालाएँ गिर चुकी थीं, दीवारें ढह चुकी थीं, शिखर गायब हो चुका था। खंडहर दीवारों पर घास उग आई थी। जैसे ही मनुष्य ने प्रार्थना करना बंद किया, वैसे ही ईश्वर भी उस स्थान को छोड़कर चला गया... क्या किसी और चीज़ ने उस खाली ढाँचे पर कब्ज़ा कर लिया था? यदि कल की घंटी की आवाज़ भ्रम नहीं थी, तो क्या वह सचमुच थी...?

मंदिर के चारों ओर चक्कर लगाकर वह वापस लौटा। सराय मंदिर के पीछे थी। सराय की खिड़कियाँ पिछली दीवार से बाहर की ओर खुलती थीं। खिड़कियों के शटर बहुत पहले ही गायब हो चुके थे। किसी ने कभी ठंड, हवा और बारिश से बचने के लिए खिड़कियों पर बोरी के पर्दे लगाए थे... वे भी पुराने हो चुके थे और उनमें कई छेद हो गए थे। पूरब से आती तिरछी धूप उन पर्दों पर पड़ रही थी - उनमें एक सुनहरी चमक थी; लेकिन अच्युत का ध्यान अचानक बीच वाले कमरे की खिड़की पर गया। उस धूप से रोशन पर्दे के पीछे कोई खड़ा था। केवल एक काली आकृति दिखाई दे रही थी। यह बताना असंभव था कि वह पुरुष था या स्त्री। हालाँकि आकृति के अलावा कुछ और दिखाई नहीं दे रहा था, ऐसा लग रहा था कि वह व्यक्ति उसकी हरकतों पर नज़र रख रहा है। अच्युत के कदम तेज़ हो गए। इस समय, वहाँ किसी साधारण पंथस्य या बेघर व्यक्ति के होने की कोई संभावना नहीं थी। स्वाभाविक व्याख्या धोखा ही थी। इक्कीस कदम चलने के बाद, उसने जल्दबाजी में पीछे मुड़कर देखा; लेकिन वह खिड़की अब खाली थी।

अब वह जर्जर हवेली उसके सामने थी। उस जर्जर, खंडहर हो चुकी इमारत में सच्ची करुणा होनी चाहिए थी, मानव निवास की इस त्रासदी को देखकर हृदय दुखी होना चाहिए था। वह अपने मन की बात ठीक से कह नहीं सकता था। लेकिन यह करुणा या पश्चाताप नहीं था। यह एक बाज़ के मंद स्पर्श जैसी अनुभूति थी। ऐसा लग रहा था मानो इमारत के चारों ओर काँटों का कवच हो। क्या यह

उस काली योगिनी (यदि ऐसी कोई थी) की उपस्थिति का परिणाम था या यही उसकी उपस्थिति का कारण था? क्या उसने इमारत को अपवित्र चुना था, या उसके आने से वह अपवित्र हो गई थी?
अच्युत ने अपना ध्यान वापस अपनी चेतना पर केंद्रित किया। इन गंभीर सात्विक चर्चाओं से उसका क्या लेना-देना था? वह तो इस इमारत में मौजूद हर चीज़ से संबंध तोड़ने आया था। वह स्पष्ट रूप से यह कहने वाला था कि उसने कल रात कोई सौदा नहीं किया था।
वह पिछली रात की तरह ही एक जर्जर दीवार से अंदर दाखिल हुआ। बरामदे के बड़े दरवाजे से होते हुए वह बाहरी हॉल में पहुँचा। छत से दीवारों पर नमी रिस रही थी और उन पर हरी फफूंद जम गई थी। कोनों से मोटे-मोटे पर्दे लटक रहे थे। नीचे का फर्श उखड़ा हुआ था। लकड़ियाँ, कूड़ा और चिड़ियों की बीट हर जगह बिखरी पड़ी थी। हॉल के बीच में खड़े होकर उसने तीनों दीवारों के दरवाजों को देखा। पिछली रात वह दाहिने दरवाजे से अंदर गई थी। वह सबसे पहले उसी कमरे में गया था। अब वहाँ दो टूटी हुई कुर्सियाँ थीं। एक मेज पर बेंत की टोकरी रखी थी। यही कल की उसकी आखिरी याद थी। वहाँ और कुछ नहीं था। वह बाहर आया। उसने एक-एक करके भूतल के सभी कमरों को देखा। हर जगह धूल थी। दो कमरों के कोनों में कागज जलाने के निशान थे।
जंग लगे बोरों का ढेर लगा था। बहुत समय पहले, किसी ने रात में सोने के लिए इसका इस्तेमाल किया होगा; लेकिन ज़्यादा समय नहीं बीता था। ढेर खोलते ही, दो चूहे और पाँच-छह गुलाबी रंग के चूजे भाग निकले। टूटी कुर्सियाँ, फलों के कटोरे, पुराने जूते और गंदे कपड़े इधर-उधर बिखरे पड़े थे। निचला तल पूरी तरह अस्त-व्यस्त था।
हॉल से ही सीढ़ियाँ ऊपर की ओर जाती थीं। ऊपरी मंजिल पर तीन कमरे थे। एक बड़ा बरामदा था। वे कमरे भी बाधाओं से भरे हुए थे। उनके ऊपर दो कमरे थे। एक कमरे का इस्तेमाल सीढ़ी के रूप में किया जाता था। अब उसका साहस काफी हद तक लौट आया था। यहाँ की आग, बुझी हुई भट्टी की तरह, अंदर ही अंदर समा गई थी। जब उसने ऊपर के दो कमरे देखे, तो उसका दिन का काम खत्म हो गया था। वह सचमुच उसका साक्षात्कार नहीं लेना चाहता था। सुंदरियाँ रात के अंधेरे में छिपी रहती हैं। उन्हें दिन के उजाले में नहीं लाना चाहिए। तब मन संदेह से मुक्त नहीं रह पाएगा।
ऊपर के दोनों कमरे गदिमान परिवार के रहे होंगे। एक कमरा दूसरे में खुलता था। दोनों कमरों के लकड़ी के दरवाजे टूटे हुए थे। वहाँ दो टूटे-फूटे, जंग लगे संदूक रखे थे। खिड़कियाँ पश्चिम दिशा की ओर थीं। दोपहर की तेज़ धूप अंदर आ रही होगी। खिड़कियों पर पुरानी कमीज़ें बंधी थीं। बाहरी कमरा खाली था। भीतरी कमरे में एक बड़ी, पुरानी और जर्जर अलमारी के अलावा कुछ नहीं था, जो

एक तरफ झुकी हुई थी। जैसे ही वह वापस लौटने वाला था, उसने अलमारी के दरवाजे को छुआ, लेकिन...

अंदर से दरवाजे को जोर से धक्का दिया गया।

वह चौंककर आगे देखने लगा।

वह अलमारी के कोने में खड़ी थी।

वह हंस रही थी, खूब हंस रही थी।

एक पल के लिए उसका दिमाग सुन्न पड़ गया। फिर चारों ओर से डर छा गया। उसी क्षण मंदिर की बड़ी घंटी बजने लगी! बूँद! बूँद!

वह अपनी पहचान छिपाना छोड़ रही थी।

वह पीछे हटने के लिए छटपटाया, उसका पैर दरवाज़े के हैंडल से टकराया, वह अचानक चीख उठा और मुड़कर सीढ़ियों से नीचे भागा; महल के सभी कमरों के दरवाजे धमाके के साथ खुल और बंद हो रहे थे। धूल उड़ रही थी। सोए हुए बाघ फड़फड़ा रहे थे और चक्कर लगा रहे थे। वे चीख रहे थे। खी: ! खी: ! सभी कमरों में हंसी की आवाज़ गूंज रही थी... वह किसी तरह भूतल पर पहुंचा... बड़े दरवाजे के पास उसका पैर किसी कारण से अटक गया... वह अचानक गिर पड़ा और बाहर सीढ़ियों पर पीठ के बल जा गिरा...

जब उसे होश आया (यानी जब उसे अपने आसपास की स्थिति समझ में आई), तो वह सड़क पर चल रहा था। मंदिर पार हो चुका था। आधा रास्ता तय हो चुका था। तो वह काफी देर तक बेहोशी या स्तब्धता की अवस्था में रहा होगा। उसने अपनी घड़ी देखी। बारह बज रहे थे। बारह! इसका मतलब है कि वह लगभग ढाई से तीन घंटे तक गायब रहा! ढाई घंटे! क्या वह इतनी देर तक बेहोश रहा था? उसने अपने माथे और सिर को छुआ। खून नहीं था। सुन्नपन नहीं था। दर्द नहीं था। उसकी बेहोशी का कारण चोट से ज़्यादा डर रहा होगा। लेकिन बीच के समय में क्या हुआ? वह क्या कर रहा था? वह बरामदे में पागलों की तरह पड़ा था? लेकिन उसे समझ नहीं आ रहा था। अगर ऐसा होता, तो उसके शरीर में कुछ गड़बड़ होती। नहीं, उसे तुरंत होश आ गया होगा... आगे क्या हुआ?

क्या वह उस महल में वापस गया? जब उसे अंदर की स्थिति का पता चल गया, तो वह स्वेच्छा से वहाँ नहीं गया होगा... लेकिन अब उसकी इच्छाशक्ति काम नहीं कर रही थी। उसने कुछ न कुछ किया ही होगा, जैसा कि कहा जा सकता है। यानी, लगभग दो घंटे से वह उस सम्मोहित, असहाय अवस्था में था। क्या वह उस कमरे में वापस गया और उसके सामने उस टूटी हुई कुर्सी पर बैठ गया? क्या उसने अपने मुँह से सौदे की शर्तें मान लीं? एक पल के लिए वह वहाँ खड़ा रहा, उसका शरीर काँप रहा था।

उसके मन में भावनाओं की लहरें एक के बाद एक उमड़ रही थीं। उसने आखिर क्या कबूल किया था?

"मेरी नन्ही पोती की हत्या कर दी गई है!" परांदे ने घबराकर कहा। उसकी बहन के दो बच्चे, जो बड़बड़ा रहे थे, उसकी आँखों के सामने आ गए। मासूम नलिनी की आकृति उसकी आँखों के सामने प्रकट हुई। उसने अपने माथे को दोनों हाथों से कसकर पकड़ लिया। उसने क्या कबूल किया था?

उसे किसी को बताना था। उसे किसी की सलाह लेनी थी। उसके मन में सिर्फ गोपाल का नाम आया। जब वह ऑफिस पहुँचा, तो 1:30 बज रहे थे। सभी कर्मचारी दोपहर के भोजन के बाद काम पर लौटने वाले थे। उसी समय, अच्युत मनोरंजन कक्ष में पहुँचा। गोपाल ने अपना कैन खत्म कर लिया था, हाथ धो लिए थे और मेज पर बैठ गया था। वह दोपहर के भोजन के बाद सिगरेट जलाने ही वाला था कि उसकी नज़र दरवाजे से अंदर आते हुए अच्युत पर पड़ी और उसकी सारी हरकतें थम गईं। अच्युत के चेहरे से ही उसकी मन की स्थिति का पता चल गया। अच्युत गोपाल के सामने वाली कुर्सी पर बैठ गया - मानो गिर पड़ा हो। उसने एक हाथ से कैन को दूर धकेल दिया और अपना हाथ मेज पर रखकर, सिर उस पर टिकाकर, बेसुध होकर वहीं बैठा रहा। गोपाल उसके कंधे को ज़ोर से हिलाते हुए पूछता रहा -

"अच्युत! हे अच्युत! ओह, बताओ क्या हुआ!"

जब अच्युत का चेहरा सामने आया, तो उसकी आँखों में इतनी बेबसी और डर था कि गोपाल उसे देखे बिना नहीं रह सका।

"गोपाल, मैं यहाँ एक शब्द भी नहीं बोल सकता - चलो कहीं बाहर बैठते हैं - देखते हैं कि ऑफिस में कोई सुविधाजनक जगह मिलती है या नहीं।"

गोपाल दो मिनट के भीतर बाहर आ गया। उसने हाथ से इशारा करके अच्युत को जाने को कहा। दोपहर की चिलचिलाती धूप में सड़कें सुनसान थीं। छोटे-छोटे पार्कों में बेघर लोगों ने पेड़ों के नीचे छायादार जगहों पर कब्जा कर लिया था। सौभाग्य से, बड़े पार्क में चौकीदार की निगरानी में एक बेंच खाली थी।

"गोपाल, तुम मुझे मूर्ख बना रहे हो," अच्युत ने कहा, "मुझे नहीं पता कि तुम्हें बताना कहाँ से और कैसे शुरू करूँ। उस दिन हम जारन-मरण, जादू-टोना और भानमती के बारे में बातें कर रहे थे, याद है? थोरात ने काली जोगिनी की कहानी सुनाई थी, याद है? थोरात ने जिसके संदर्भ में वह कहानी सुनाई थी, उसका नाम है - परांदे - मैं उसके घर गया और उससे मिला -"

"गोपाल उस काली तांत्रिक के पास गया था; यह सच है - लेकिन उसे उस मुलाकात का बहुत पछतावा हो रहा था - वह कह रहा था कि उस घटना में उसकी डेढ़ साल की पोती की मौत हो गई! उसका परिवार कह रहा है कि वह भ्रम की स्थिति में चला गया है और यह सब उसकी कल्पना है... वह मुझे वहां न जाने के लिए कह रहा था - लेकिन अगर वह सच में मेरी सुरक्षा चाहता तो मुझे वह पता नहीं देता! लेकिन ऐसा नहीं है... वह कह रहा था कि पूछने वाले हर किसी को पता बताना उसकी मजबूरी थी - वह चुप नहीं रह सका - मुझे यह मजबूरी समझ नहीं आती - लेकिन यह सच है कि जब उसने मुझे पता बताया, तो वह कोने में मुंह करके बैठ गया और फूट-फूटकर रोने लगा..."
"तो फिर आगे बढ़ो! क्या तुम उस पते पर गए थे?"
"हाँ, बिल्कुल! मैंने भी वही बेवकूफी भरी बात दोहराई! गोपाल, अब मैं तुम्हें सच बताती हूँ - मैं इस संकीर्ण, गतिहीन मध्यमवर्गीय जीवन से सचमुच थक चुकी हूँ - मैं कहती हूँ हाँ, नहीं, ऐसा था... क्योंकि अब वह भी खोने के कगार पर है, यह कितना प्यारा है; मुझे लगने लगा है कि मैं उसे पाना चाहती हूँ - लेकिन गोपाल, कुछ गड़बड़ हो गई है!"
उसने अपने विचारों को एकत्रित करने के लिए कुछ देर विराम लिया।
"गोपाल, वह जगह गाँव के बाहर, एक बहुत पुराने मंदिर के पीछे है... वहाँ एक किला है... वह तीन मंजिला किला है... परांदे ने कहा था कि वह वहाँ केवल रात में मिलती है, इसलिए मैं रात आठ बजे के बाद गया... गोपाल, वह जगह भूलभुलैया जैसी है... कभी सजा हुआ बैठक कक्ष दिखता है, कभी गिरे हुए पत्थरों का ढेर। कभी एक खूबसूरत औरत दिखती है, कभी कंकाल... गोपाल, मुझे लगा जैसे मैंने वहाँ अपनी पवित्रता खो दी हो... मुझे नहीं पता कि अनजाने में मैंने किन शर्तों को मान लिया था..."
"कल रात मैं पूरी तरह से स्तब्ध थी। आज सुबह जब उठी तो मैंने ठान लिया कि मैं वहाँ जाकर उसे साफ़-साफ़ बता दूँगी कि मुझे कुछ नहीं चाहिए, मैं कुछ नहीं दूँगी... मैं वहाँ गई... पहले तो मुझे लगा कि पूरा महल खाली है - लेकिन गोपाल! वह तीसरी मंज़िल पर एक पुरानी लकड़ी की अलमारी में बैठी थी... मानो मेरा इंतज़ार कर रही हो... जैसे ही मैं बाहर आ रही थी, मेरा पैर लड़खड़ा गया, मैं गिर पड़ी, शुद्धा एक पल के लिए गायब हो गई... बस! उसके लिए इतना ही काफ़ी था! मुझे अगले ढाई से तीन घंटे याद नहीं... शुद्धा पूरी तरह खो गई थी... जब मुझे होश आया, तो मैं कॉज़वे रोड पर चल रही थी... मुझे सच में याद नहीं कि इस बीच क्या हुआ... लेकिन... लेकिन गोपाल, लगता है मैं अंदर वापस चली गई थी... उसी कमरे में उस काली योगिनी के सामने बैठकर मैंने कुछ कबूल किया होगा... क्या यही वह बात है जिससे मैं डर रही हूँ! वे कह रहे थे कि मेरी छोटी पोती गायब हो गई है... मेरी चाची के

दो बहुत समझदार बच्चे हैं... अगर उन्हें कुछ हो गया तो क्या होगा? मेरी बेटी बहुत भोली है, वह भोली है..." अगर उस बेचारी लड़की को कुछ हो गया तो...?''

अच्युत की आवाज़ तीखी थी। उसका मन भय से कांप रहा था। यह उसे दोष देने का समय नहीं था। इस समय धैर्य की आवश्यकता थी। न ही उससे तर्क करने का समय था। उसके शब्दों से कुछ स्पष्ट हो रहा था। उसे रात और सुबह के अनुभव पर पूर्ण विश्वास था। गोपाल का मन इस मामले में तटस्थ और खुला था। चाहे ऐसी घटनाएँ घटित हो रही हों या नहीं - यह उन लोगों के लिए मायने रखता था जो दृढ़ता से मानते थे कि वे घटित हो रही हैं। ये बाधाएँ झूठी भी हो सकती हैं और इन्हें 'सृजित' करने वाले जादूगर भी दुष्ट हो सकते हैं - लेकिन सच्चाई यह है कि जो लोग मंत्र, जादू-टोना, कर्म और भानमती जैसी बुरी विनाशकारी शक्तियों में विश्वास करते हैं, वे जादूगर की शक्ति में भी विश्वास रखते हैं। अंततः, इस दुष्ट तर्क के क्षेत्र में भी, मन की तर्कशक्ति काम करती है। कल्पना का कवच कल्पना के पत्थर के लिए काम करता है। कल्पना की छतरी कल्पना की वर्षा के लिए काम करती है। तो फिर ऐसे काल्पनिक कृत्य को 'सृजित' करने वाला कपटी जादूगर भी काम करता होगा।

"अच्युत!" गोपाल ने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा, "क्या तुम मेरी बात सुन रहे हो? ऐसे ही धैर्य खोते हुए मत बैठो - कुछ नहीं होगा - हमें कुछ करना होगा - ऐसे ही हाथ-पैर हिलाते हुए बैठे रहने से क्या होगा?"

अब पहली बार अच्युत का स्वाभिमान जागा।

"हम क्या कर सकते हैं, गोपाल?"

"अच्युत, एक पल के लिए यह समझ लो कि तुम्हारे साथ जो कुछ हुआ है, वह वास्तविक है, काल्पनिक नहीं; यह भी समझ लो कि उसमें कोई छल, बनावट या कैद नहीं है। इसका मतलब है कि तुम सचमुच एक अमानवीय, घातक और क्रूर शक्ति के संपर्क में आए हो। तुम उस शक्ति से खतरे में हो। ठीक है। मैं यह सब स्वीकार करता हूँ; लेकिन फिर क्या मुझे अपनी रक्षा के लिए कुछ नहीं करना चाहिए? क्यों चुपचाप ऐसे ही बैठे रहूँ और कसाईखाने में बकरी की तरह शिकार बन जाऊँ?"

"लेकिन हमें इसके बारे में क्या पता है? मुझे बताओ, हम क्या कर सकते हैं?"

"अगर आप इसे खुद नहीं कर सकते तो किसी और से मदद क्यों नहीं ले सकते?"

"कौन मदद करेगा?"

"देखते हैं! मान लिया कि जैसा आप कहते हैं, कुछ बुरी शक्तियाँ हैं, जो खून की प्यासी हैं और शैतानी इच्छाओं से ग्रस्त हैं... लेकिन क्या उन्होंने हमारी दुनिया पर कब्ज़ा नहीं कर लिया है? क्या हर जगह

अनैतिकता और अत्याचार की लहर नहीं चल रही है? क्या गुणी, नेक और सभ्य लोग सुखी जीवन जी रहे हैं? क्या देवी-देवताओं की पूजा हो रही है? तो, जिस प्रकार बुरी शक्तियाँ हैं, उसी प्रकार कुछ अच्छी, रक्षा करने वाली शक्तियाँ भी होनी चाहिए, है ना? हम उनकी मदद क्यों नहीं ले सकते?"
अब पहली बार अच्युत की आँखों में दिख रही बेबसी गायब हो गई थी। उसके कंधे थोड़े ऊपर उठ गए थे। गोपाल के हाथ पर हाथ रखते हुए उसने कहा,
"गोपाल, तुम्हें अंदाज़ा भी नहीं है कि तुम्हारे शब्दों ने मुझे कितना साहस दिया है! मेरे कंधों से कितना बोझ हल्का हो गया है!"
"मुझे इसी तरह के जोश की ज़रूरत है, अच्युत! चलो, ऑफिस आओ। कम से कम हाज़िर तो हो जाओ। अपना समय क्यों बर्बाद कर रहे हो? अभी हार मत मानो... मुझे एक-दो दिन में कुछ जानकारी मिल जाएगी। फिर देखेंगे कि काला योगी क्या कर सकता है!"
नलिनी यह सब आश्चर्य और लगभग अविश्वास से सुन रही थी। ऐसा लग रहा था मानो वह किसी नाटक के पर्दे के पीछे बैठी हो और उसके पीछे एक रोमांचक और भयानक नाटक चल रहा हो। अच्युत के मन में दबी इच्छाएँ, और इसके लिए उसने जो भी यात्रा की थी, सब व्यर्थ लग रही थीं। अगर उसने नलिनी से चार शब्द भी कहे होते, तो वह समझ जाता कि नलिनी धन, विलासिता या किसी सुंदर लड़की की लालची नहीं थी। वह अपने जीवन में खुश थी। उसे किसी को यह सिखाने की ज़रूरत नहीं थी कि अगर वह सड़क से नज़रें हटाकर आकाश की ओर नहीं उठाएगी, तो वह ज़रूर ठोकर खाएगी - उसे यह सिखाने की ज़रूरत नहीं थी; लेकिन अच्युत की असंतुष्टि केवल धन के बारे में नहीं हो सकती - शायद यह इसलिए भी थी क्योंकि जब उसकी चाची एक अमीर घर में रहती थी, तब उसने उसके साथ बहुत बुरा बर्ताव किया था... यह इलाका खतरनाक था... अच्युत अपनी जान की परवाह किए बिना भी इसे स्वीकार नहीं करेगा... लेकिन अब इस दार्शनिक चर्चा का क्या मतलब? जो होना था, वह हो चुका था... लेकिन यह कितनी भयानक बात है!
भाई, तुम तो ऐसी बातों पर विश्वास करते हो!
"भाभी, मुझ पर भरोसा करने का तो सवाल ही नहीं उठता - ये अच्युत का मामला है! क्या उसे लगता है कि वो किसी अमानवीय, खतरनाक, शक्तिशाली प्रेरणा के प्रभाव में है? उसका दिल इस डर से भरा हुआ है कि उसका क्या होगा।"
लेकिन अब वे एक शब्द भी नहीं बोलते!

"हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि यह प्रकार एक और चरण तक पहुँच गया है... इसकी उत्पत्ति उसके स्वयं के मन में है, हम कैसे जान सकते हैं कि यह कहीं और से उत्पन्न हुई है? हम इस मामले में पूरी तरह से अनभिज्ञ हैं!"

"लेकिन आपने अच्युत को मदद की उम्मीद दिखाई थी!"

"लेकिन उन्होंने मुझे ज़रा भी समय नहीं दिया! और देखो किस्मत कैसे खेल खेलती है - अगली ही सुबह मुझे अचानक टहलने जाना पड़ा... अगर मुझे ज़रा भी अंदाज़ा होता, तो मैं किसी तरह इसे टाल लेता - उसी रात मैंने पार्क में अच्युत से बात की, कई लोगों से मिला और एक नाम और पता पता किया, मैंने उनसे मिलने का फैसला भी कर लिया था... जब मैं वापस आया, तो मैंने क्या देखा! अच्युत का पता ही नहीं था! जब मैंने पूछताछ की, तो पता चला कि आप पहले आए और ऑफिस चले गए, और अगले दिन उनके एक रिश्तेदार शंकरराव आए और चले गए... तीसरी शाम को, मैं सीधे ऑफिस से यहाँ आया... मैंने देखा कि दरवाज़ा बंद था! मैंने सोचा कि आप डॉक्टर के पास गए होंगे या ज़्यादा से ज़्यादा अस्पताल गए होंगे... लेकिन जब मैंने पड़ोसियों से पूछताछ की, तो पता चला कि आप सब पिछली रात मुंबई चले गए थे! किसी को नहीं पता था कि आप कहाँ गए थे या कब लौटेंगे!"

"अरे, इतनी भागदौड़ थी कि किसी से बात करने का समय ही नहीं मिला -" मैं उन्हें अपने अकेलेपन के बारे में क्यों बताऊं!

"बहन, आपके पड़ोसी कितने अच्छे हैं! वे अच्युत की बीमारी को लेकर कितने चिंतित थे! आपने अकेले जो भागदौड़ की, उसकी उन्होंने सराहना की! हर कोई चाहता था कि अच्युत जल्दी ठीक होकर वापस आ जाए!"

नलिनी को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ! जिन्हें वह असभ्य, अभिमानी और घमंडी समझती थी, वे असल में इतने दयालु लोग थे! यह समझने के लिए उसे इस तिकड़ी की निष्पक्ष दृष्टि की आवश्यकता थी!

उसका ध्यान मूल प्रश्न की ओर आकर्षित हुआ।

आप किस नाम और पते की बात कर रहे हैं?

"वह एक श्रद्धालु हैं। उनका अपना एक अलग मठ है। पहले वह गाँव के बाहर था - अब चारों ओर विकास हो गया है। वह वहाँ अकेले रहते हैं। उनके आसपास के लोग उनके बारे में कुछ खास नहीं जानते। उनका किसी से कोई संबंध नहीं है - उनके आसपास के लोगों को कोई परेशानी नहीं होती; लेकिन सब थोड़े असमंजस में दिखते हैं। हमें अच्युत को इस श्रद्धालु के पास ले जाना चाहिए।"

"उन्हें कहाँ ले जाना है, यह एक रहस्य है!" नलिनी ने कहा।

"या हमें ऐसा करना चाहिए? देखते हैं कि क्या वे श्रद्धालु यहाँ आते हैं?"
वे दोनों आपस में बातचीत करने में इतने मग्न थे कि उन्होंने अंदर के कमरे के दरवाजे पर ध्यान ही नहीं दिया।
जब दरवाजे से कराहने की तेज आवाज आई, "हू! हू! हू!", तो वह आश्चर्य से पीछे मुड़ गया।
अच्युत दरवाजे पर खड़ा था - लेकिन एक पल के लिए नलिनी को पता ही नहीं चला कि वह अच्युत है। उसके बाल जूड़े में बंधे थे। उसकी मुट्ठियाँ कसकर बंद थीं और कानों से लगी हुई थीं। उसकी आँखें बहुत बड़ी, चौड़ी और लाल थीं। उसका मुँह और गाल सूजे हुए और लाल थे, मानो उसने गहरी साँस ली हो... उसकी गर्दन के पास की नसें साफ उभरी हुई थीं। उसका पूरा शरीर काँप रहा था, मानो उसे बहुत ठंड लग गई हो - बीच-बीच में उसके कंधों और छाती में झटका लगता था...
नलिनी अच्युत को देखकर हैरान रह गई। कई दिनों में यह पहली बार था जब उसने नलिनी के प्रति कोई सकारात्मक कदम उठाया था।
लेकिन कितना भयानक चेहरा है! और कितनी अजीब हरकत है!
अगर वह शांत लेटा रहता तो बेहतर होता... उसे गोपाल की कही एक बात याद आई - परंद्या की पत्नी ने कहा था, "पहले तो वह बस शांत लेटा रहता था - लेकिन बिजली का झटका लगने के बाद से वह इतना शोर मचाने लगा है!"
क्या अच्युत के मामले में भी कुछ ऐसा ही हो रहा था?
"बहन, तुम यहीं रुको... अगर मन करे तो पड़ोसियों को बुला लेना... मैं जितनी जल्दी हो सके आ जाऊंगी... देखते हैं कि वे आ रहे हैं या नहीं..."
उसने जानबूझकर 'भगत' नाम नहीं लिया। क्योंकि उसके मन में एक अजीब सा संदेह था कि जैसे ही बातचीत में भगत का नाम आया, अच्युत बिस्तर से उठकर दरवाजे तक आ गया था... अगर यह सच था, तो यह अच्छा संकेत नहीं था... अगर भगत का नाम मात्र ही इतना असर कर रहा था, तो क्या यह स्पष्ट नहीं था कि अच्युत के भीतर कुछ हलचल हुई थी, कि वह किसी अमानवीय, बुरी शक्ति के प्रभाव में था?

□□□

3

भगत बाहर छोटे से आंगन में हाथ पीठ पीछे बांधे टहल रहे थे। इक्यावन वर्ष पूर्व, जब वे इस मठ में रहने आए थे, तब चारों ओर घनी झाड़ियाँ थीं। शहर इतना दूर था कि यहाँ से शहर की रोशनी भी दिखाई नहीं देती थी; लेकिन जैसे-जैसे वर्ष बीतते गए, शहर बढ़ता गया और अब शहर ने उनके छोटे से मठ को चारों ओर से घेर लिया था। शुरुआत में, वे इस शोर-शराबे से बहुत परेशान होते थे - लेकिन मन ही मन हंसते हुए, उन्होंने अपनी दिनचर्या में उचित बदलाव कर लिए थे। उनके दैनिक ध्यान का समय बदल गया था। फिर भी, अगर आस-पास कोई शादी समारोह या सार्वजनिक कार्यक्रम होता, तो लाउडस्पीकर और लोगों का शोर उन्हें इतना परेशान करता कि वे इस मठ से कहीं और रहने का विचार करते; लेकिन ज़ाहिर है, यह विचार एक पल से ज़्यादा नहीं टिकता था और न ही यह गंभीर होता था। क्योंकि उन्हें मठ छोड़ने का कोई अधिकार नहीं था। वे इस भवन के निवासी थे, चाहे उनका जीवन छोटा हो या लंबा। उनके बाद अगला 'भगत' आएगा... ठीक वैसे ही जैसे वह स्वयं एक रात पिछले 'भगत' का स्थान लेने के लिए आया था।

लगभग पचास साल पहले की उस भयावह रात में, बीस वर्ष का एक युवक बाढ़ के उफनते पानी में अपनी जान बचाने के लिए एक पुल के किनारे पर चढ़ रहा था, तभी एक फोन आया...

"रुको!" अंधेरे से एक बूढ़ा आदमी उसकी ओर बढ़ा।

"क्या तुम जीवन से इतने थक चुके हो? क्या तुम इसे त्यागने के लिए तैयार हो? तो मुझे दे दो!" उसने कहा था। उसने कोई कारण नहीं पूछा था, नहीं।

“अब तक के अपने जीवन को भूल जाओ। अब नए सिरे से जीना सीखो। तुम्हारा नाम भगत है,” उस बूढ़े व्यक्ति ने कहा था और उसे इस मठ में ले आया था। कठिन, कठोर और लंबी साधना का प्रारंभ हो चुका था।

मठ के पुस्तकालय में विभिन्न भाषाओं में, विभिन्न माध्यमों में लिखी गई पुस्तकें थीं। कुछ पतली लकड़ी की पट्टियों पर थीं। कुछ बर्च के पत्तों पर थीं। कुछ पकी हुई मिट्टी के चौकोर टुकड़ों पर थीं। कुछ चर्मपत्र पर थीं। सभी पुस्तकें संस्कृत, पाली, अर्ध मगधी या प्राकृत में नहीं थीं। कुछ ब्राह्मी लिपि में थीं। कुछ चित्रलिपि में थीं। कुछ तो मिट्टी पर उकेरी गई त्रिभुजाकार, वर्गाकार 'कीलाकार' लिपि में भी थीं। जितनी भाषाएँ थीं... प्रत्येक पुस्तक में एक 'कुंजी' थी। उस 'कुंजी' का अर्थ भी समझना आवश्यक था - इसमें वृद्ध व्यक्ति का सहयोग और मार्गदर्शन मिलता था।

“मैं यह बात तुम्हारी जिज्ञासा शांत करने के लिए नहीं बता रहा हूँ,” उस बूढ़े (भगत) ने एक बार कहा था, “मैं यह इसलिए बता रहा हूँ ताकि तुम हमारे आटे की परंपरा को जान सको। एक साल बाद मैं

तुम्हें विस्तृत जानकारी वाली एक किताब दूँगा। फिर मैं उसमें अपने नोट्स लिखूँगा। तुम भी आखिरी दिन अपने नोट्स लिख लेना। लेकिन यह बात याद रखना - यहाँ हमेशा से ऐसी आलीशान इमारत नहीं थी। मैंने इसे बनवाया है। इससे पहले यहाँ ईंटों और मिट्टी के प्लास्टर से बनी एक साधारण इमारत थी। इससे पहले मिट्टी की दीवारों वाले कमरे थे। इससे पहले लकड़ी के तख्तों की दीवारें थीं। एक समय यहाँ खुरदुरे पत्थरों का महल था। उससे पहले बाँस की दीवारें थीं। उससे पहले कच्ची, बिना पकी मिट्टी की ईंटों की छत थी। उससे पहले एक चंदवा था। उससे पहले आश्रय के लिए केवल एक पेड़ था। उससे भी पहले एक गुफा थी। लेकिन यह सब नश्वर है। कई प्राकृतिक और मानवीय आपदाएँ आई हैं। कभी बाढ़ आई, कभी भूकंप आया, कभी यह परिसर युद्ध के मैदान में मिला... बाड़, दीवारें, इमारतें, सब कुछ बदल गया है। महत्व। हमने जो सीमाएँ निर्धारित की हैं, वह सुरक्षित है। यहाँ निवास करने वाले 'भगत' को कभी कोई हानि या चोट नहीं पहुँचती। जैसे पानी के बहाव में कितनी भी देर रख दो, कांच का एक चौकोर टुकड़ा सूखा और अक्षुण्ण रहता है, वैसे ही यह हमारा स्थान है... यह सतह पर सरल दिखता है; लेकिन यह समय के प्रवाह से, संसार के प्रवाह से पूरी तरह अलग और पृथक है... मैं इसे अभी दोहराऊंगा नहीं... आपको इस प्राचीन परंपरा को आगे बढ़ाना है..."

इस बारे में फिर से बात करते हुए...

"कई लोगों ने इस स्थान पर अनेक प्रकार की संपत्तियाँ जोड़ी हैं। जैसे सम्राटों के उत्तराधिकारी किसी साम्राज्य-राजधानी की सुरक्षा और महिमा में वृद्धि करते हैं... वैसे ही ये संरचनाएँ अमूर्त हैं, नग्न आँखों से अदृश्य हैं... आप भी अपनी शक्ति के अनुसार इनमें वृद्धि करेंगे। आप इसका अनुभव करेंगे। जब आप अपनी दृष्टि एक साधारण टीले पर केंद्रित करते हैं, तो अंतर्मन के सबसे गहरे स्तरों की आकृतियाँ वहाँ प्रकट होने लगती हैं... ऐसा प्रतीत होता है कि किसी दैवीय चमत्कार से कुछ नई शक्ति संरचनाएँ प्रकट हुई हैं... लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। मस्तिष्क और बुद्धि चौबीसों घंटे उस विषय पर निरंतर चिंतन और ध्यान करते रहते हैं जिसके प्रति हम समर्पित हैं। इसी से ये नए विचार उत्पन्न होते हैं। और बुरी शक्तियों, पापी आवेगों से संघर्ष हमारे छोटे जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा है। वे हमारे निरंतर और शाश्वत शत्रु हैं। और जैसे हममें, वैसे ही उनमें भी निरंतर विकास होता रहता है... हर बार वे नई आशा, नए उत्साह, नई उम्मीद के साथ षड्यंत्र रचते हैं। हमें पराजित नहीं होना चाहिए... यहाँ तक कि यदि हमें परीक्षा के क्षण में स्वयं का बलिदान भी करना पड़े, तो यह ठीक है; लेकिन कुछ भी शत्रुओं के हाथों में नहीं पड़ना चाहिए... लेकिन हम अभी तक पराजित नहीं हुए हैं...

लेकिन उनके विनाश के बाद उनकी नई पद्धतियाँ हम पर अंकित हो जाती हैं... वे रक्षा रणनीति में भी योगदान देती हैं..."

उन्होंने इस विषय पर दोबारा बात नहीं की और ज़ाहिर है, दिन बीतने के साथ-साथ उनकी ज़रूरत भी नहीं रही। नवगठित 'भगत' प्रत्यक्ष अनुभव से सब कुछ समझ रहे थे। अचानक ही उनके जाने का दिन आ गया। कितना अप्रत्याशित! यद्यपि यह अपरिहार्य था, फिर भी वे चाहते थे कि यह और भी टल जाए। विरह के आँसू तो देवता भी नहीं रोक पाते... वे एक साधारण मनुष्य हैं! बुद्धि चाहे कितनी भी तीक्ष्ण हो जाए, चाहे कितनी भी गहरी हो जाए, कोई भी कभी भी दुर्गुणों को नहीं समझ पाया है। वे हमेशा बुद्धि की पहुँच से परे रहे हैं।

उस शाम, उस बूढ़े भक्त ने प्राचीन पुस्तक निकाली। सदियों से उस पर कई लोगों की लिखावट थी। एक लिखावट में लाल रक्त रेखा (अब काली) में एक तारा बना हुआ था। उस समय के भक्तों के पास इसे बनाने के लिए शायद बहुत कम समय रहा होगा... अब उस बूढ़े भक्त ने अपनी तीन पंक्तियाँ लिखीं और पुस्तक उसे सौंप दी। वह मठ का उत्तराधिकारी और उसकी परंपराओं का संरक्षक बन चुका था। उस रात फल भोज के बाद, उसने अपने कंधों से कढ़ाईदार शॉल उतारकर अपने हाथों से अपने कंधों पर लपेट लिया। उस वस्त्र का स्पर्श ही इतना शक्तिशाली था।

उन्होंने अपने कंधों पर एक साधारण सफेद लबादा डाला और चल पड़े।

"क्या मैं थोड़ी देर के लिए आपके साथ आ सकता हूँ?"

"ज़रूर, चलो। उस पुल पर आने में कोई दिक्कत नहीं है जहाँ हम दोनों पहली बार मिले थे।"

वे रात के सन्नाटे में चलते आ रहे थे। अब हालात इतने बिगड़ चुके थे कि शब्दों में बयान करना मुश्किल था। ये उनके साथ बिताए आखिरी पल थे। उस पहली मुलाकात की यादें भला कैसे मन में न रह जाएं? लेकिन आज नदी में बाढ़ नहीं थी। जुदाई के इस मौके पर भी वह शांत बह रही थी। वह पुल के बीचोंबीच पहुंचा, जहां कुछ दिन पहले उसने बेधड़क अपनी जान दे दी थी।

भगत ने उसे वहीं रोक दिया, हल्के से उसके कंधे को हाथ से छुआ और फिर तुरंत चलने लगा।

उन पंद्रह से बीस सेकंड के लिए, उसे ऐसा लगा कि उसके सामने जो पुल था, वह उसका जाना-पहचाना पुल नहीं था... उस पुल के नीचे कोई साधारण नदी नहीं थी, बल्कि एक बहुत गहरी खाई थी, जिसके तल में सीमाओं की नदी, वैतरणी नदी बह रही थी...

भगत ने पुल पार किया। पुल के दूसरी ओर कई श्वेत आकृतियाँ उनका स्वागत करने के लिए मौजूद थीं...

फिर पल भर में, स्वप्नलोक मिट गया। उस क्षण के लिए, चमक, सुगंध, मधुर ध्वनियाँ सब थम गईं...

फिर रोजमर्रा की जानी-पहचानी दुनिया की कठोर रेखाएं आपस में जुड़ गईं।
भारी कदमों से 'भगत' मठ लौट आया।
वह मठ से शायद ही कभी बाहर निकलते थे। उन्हें संदेह था कि उनके सामने अध्ययन का जो विशाल भंडार खुला था, उसे वे इस छोटे से जीवन में कितना पूरा कर पाएंगे। हर पल अनमोल था। वे एक भी पल बर्बाद नहीं करना चाहते थे।
उनके चारों ओर एक बस्ती बसी हुई थी। उन्होंने कभी सोचा भी नहीं था कि उनके आसपास रहने और काम करने वाले लोग उनके बारे में क्या सोचते हैं। क्योंकि उनका पूरा जीवन आम जनता से बिल्कुल अलग स्तर पर बीता था।
कुछ लोग इसे शौक मानते हैं। कुछ लोग इसे हानिरहित मानते हैं।
एक धूर्त चोर के लिए यह एक साधारण मामला लग रहा था। एक अकेला बूढ़ा आदमी। वह अंधेरी रात में खुले द्वार से अंदर घुसा था, इस उम्मीद में कि उसे एक बहुत बड़ा बक्सा मिल जाएगा।
जैसे ही वह गेट से अंदर दाखिल हुआ, उसे पास के लोहे के बाड़े से चरमराहट की आवाज़ सुनाई दी! उसने इस पर ध्यान नहीं दिया था। अब, जब वह कमरे में दाखिल हुआ, तो उसे अपने पीछे ज़मीन पर एक और चरमराहट की आवाज़ सुनाई दी, और वह मुड़कर देखने लगा। बाड़े की दोनों लाल बाड़ें दरवाज़े के अंदर ज़मीन पर पड़ी थीं। क्या यह अपने आप हुआ था या जानबूझकर? कौन जाने - लेकिन बाड़ का ऊपरी हिस्सा बिना आँखों वाले चेहरे जैसा लग रहा था। उसके नीचे एक पतला कंधा था। उसके नीचे दो बहुत छोटे हाथ थे। एक बहुत लंबे शरीर के अंत में दो छोटी मोटी टांगें थीं... अब दोनों बाड़ें धीरे-धीरे हिल रही थीं... और बीच में, 'क्रैक!' की आवाज़ के साथ, उसकी मोटी टांगें ज़मीन पर जा गिरीं...
नहीं! नहीं! जाओ! जाओ! फिर कभी मत आना! चोर लगभग रोते हुए, चीखता हुआ, तेज़ कदमों से भाग निकला... मठ का परिसर पवित्र और सुरक्षित था...
यह श्रद्धालु शाम के समय आंगन में घूम रहा था।
वह युवक उनके बंगले के बाहर वाली सड़क से दो-तीन बार गुजरा। अंदर जाने से पहले वह आत्महत्या करने की तैयारी कर रहा होगा। अंत में, वह सीधे गेट से अंदर आ गया। वह तब तक रुका रहा जब तक भगत ने मुड़कर उसका सामना नहीं किया, और फिर हाथ जोड़कर कहा,
"हेलो, मैं भगत से मिलने आया हूँ। क्या वो यहाँ हैं?"
"मैं भगत हूं। आपका काम क्या था?"
"मेरा नाम गोपाल उपाध्याय है। क्या आप मुझे थोड़ा समय दे सकते हैं? मुझे आपसे कुछ कहना है..."

"अंदर आओ, अंदर आओ। मुझे बताओ कि तुम्हें वहां क्या कहना है।"
उनके पीछे-पीछे अंदर जाते हुए गोपाल मन ही मन सोच रहा था। वह एक बहुत ही साधारण व्यक्ति लग रहा था। सफेद धोती और सफेद वस्त्र। उम्र के कारण चेहरे पर हल्की झुर्रियां। माथे पर राख। सौम्य दृष्टि। मेहनती ब्राह्मण, पुरानी पीढ़ी का; लेकिन हमने उसके बारे में जो सुना है, वह अतिशयोक्ति तो नहीं है, है ना? नलिनी पर हमने जो आशा दिखाई है, वह व्यर्थ तो नहीं जाएगी, है ना?
अंदर का कमरा बरामदे जैसा था। तीनों तरफ खिड़कियाँ थीं। पूरा कमरा शाम की सुनहरी पीली रोशनी से जगमगा रहा था। दीवारों के किनारे साधारण लेकिन बेहद आरामदायक कुर्सियाँ लगी हुई थीं। भगत ने अकेले बैठे हुए दूसरी तरफ इशारा किया।
"बैठ जाओ और मुझे धीरे-धीरे बताओ कि तुम मेरे पास क्यों आए हो।"
गोपाल ने मन ही मन सोचा, समय बहुत कीमती है। बेवजह बहस करने और समय बर्बाद करने का कोई फायदा नहीं था। उनसे साफ-साफ पूछ लो, अगर वे मदद करने से मना कर दें तो सीधे बाहर निकल जाओ।
"भगत, मेरे एक मित्र पर एक बहुत ही विचित्र विपत्ति आ पड़ी है। हर पल कीमती है। इसलिए यदि आपको मेरे व्यवहार में कुछ भी गलत या अनुचित लगे, तो कृपया मुझे स्पष्ट कर दें। भगत, मैंने सुना है कि यदि कोई दुर्भाग्यशाली व्यक्ति बुरी शक्तियों के चंगुल में फंस जाता है, जैसे कि प्रेतात्मा का प्रभाव, जादू-टोना या तंत्र-मंत्र, तो आप उसकी सहायता करते हैं और उसे उससे मुक्त करते हैं। क्या यह सच है?"
भगत ने हल्की सी मुस्कान दी।
"आप तो बहुत ही प्रभावशाली वक्ता हैं! और आपका मतलब यह है कि आपके दोस्त के साथ इतनी बड़ी विपत्ति हुई है?"
"हाँ।"
"इसका आपके पास क्या सबूत है?"
"वह बिस्तर पर लकड़ी के गट्ठे की तरह पड़ा था। जब मैं और उसकी पत्नी बाहर वाले कमरे में बात कर रहे थे, तभी तुम्हारा नाम लिया गया। तुम्हारा नाम लेते ही वह बिस्तर से उठा, छटपटाता हुआ कमरे के दरवाजे तक आया... वह दांत भींचे हुए, लाल आंखों से आग उगलते हुए हमें घूर रहा था... मैंने उसे उसकी पत्नी को सौंपने के बाद जल्दी से तुम्हारे पास आई हूं... भगवान ही जाने वहां उस पर क्या विपत्ति आई होगी! वह घर में बिल्कुल अकेली है... और वह कुचले हुए जानवर की तरह बेचैन है!"

गोपाल की बातें सुनकर भगत पहले तो स्तब्ध रह गया और फिर एकदम सख्त हो गया। वह अपनी कुर्सी से उठ खड़ा हुआ।

“तुम सही कह रहे हो कि समय बहुत कीमती है। अंदर आओ...” गोपाल उसके पीछे-पीछे अंदर के कमरे में चला गया। यह अध्ययन और चिंतन का कमरा था। भगत ने अलमारी से पाँच-छह अगरबत्तियाँ निकालीं, उसी अलमारी में रखी एक बहुभुजाकार कांच की बोतल से तीन-चार चुटकी राख निकालकर एक कागज पर रख दी। उसने दोनों चीजें गोपाल को सौंपते हुए कहा,

अब तुम जाओ। घर के बाहर एक अगरबत्ती जलाओ और सीधे अंदर जाओ। सभी दरवाजों और खिड़कियों के अंदर की तरफ राख की एक पतली सी लकीर खींच दो। एक-एक करके सभी अगरबत्तियाँ जलाओ। तब तक वह काफी शांत हो जाएगा। शायद सो भी गया होगा। लेकिन अगर वह नहीं सोता है, तो जागते रहने पर भी किसी को कोई परेशानी नहीं होगी। कल सुबह यहाँ आना। फिर देखेंगे। अब जाओ।

भगत को आधे मन से प्रणाम करने के बाद गोपाल जल्दी से मठ से निकल गया। भगत को अपने हर शब्द पर इतना भरोसा था कि उसे अपने शब्दों पर शक करने का ख्याल तक नहीं आया।

नलिनी कुछ कह पाती, उससे पहले ही गोपाल जा चुका था। अच्युत अभी भी दरवाजे पर खड़ा लड़खड़ा रहा था। अब उसके कसे हुए दांतों से "हम्म-हम्म-हम्म-हम्म" जैसी गुनगुनाहट की आवाज आ रही थी। अब अगर उसने कुछ गलत कर दिया, तो नलिनी उसे अकेले कैसे रोक पाएगी? गोपाल ने कहा था, पड़ोसियों से मदद ले लो। अब समय आ गया था। सारी हड़बड़ी और शर्मिंदगी को दरकिनार करते हुए, वह बाहरी दरवाजे से बाहर निकली, दरवाजे को बाहर से बंद किया और जल्दी से जाकर दोनों पड़ोसी दरवाजों पर दस्तक दी। इस समय तो वह पड़ोसियों के अंतिम नाम भी भूल चुकी थी।

"क्या हाल है? कौन जाग रहा है? क्या हुआ?" तीन पुरुष और दो महिलाएं दरवाजे से बाहर आकर पूछने लगे।

"अरे, क्या तुम मेरे पास आ सकते हो? क्या तुम देख रहे हो कि वे ये सब कैसे कर रहे हैं? गोपाल भाऊजी चले गए हैं, वो जल्द ही किसी को लाएंगे - क्या तुम उन्हें थोड़ी देर के लिए रोक सकते हो?"

तीनों आदमियों ने एक पल के लिए एक-दूसरे को देखा। और फिर उनमें से एक ने कहा,

"हाँ, चलो, नलिनिताई! आओ, हम आ रहे हैं!"

उसने हिचकिचाते हुए बाहरी दरवाज़ा खोला। उसने एक दीपक जलाया... लेकिन कमरा पूरी तरह अंधेरा था। क्या दीपक बुझ गया था या अच्युत ने खुद बुझा दिया था? कमरे में कोई ज़ोर-ज़ोर से इधर-

उधर घूम रहा था, अलमारियों पर चीज़ें पटक रही थीं... हम्म - हम्म - हम्म - हम्म - एक लगातार गुनगुनाने की आवाज़ आ रही थी।
उन तीनों ने वास्तव में इसकी कल्पना नहीं की थी। फिर भी, उनमें से एक ने अवसर का लाभ उठाते हुए दूसरों को बताया,
"हम दरवाजे पर खड़े रहेंगे... हम नहीं चाहते कि अच्युतराव घर से बाहर निकले..." फिर वह पीछे मुड़ा और अपनी पत्नी से बोला,
"अरे, क्या तुम मुझे अपनी मेज पर रखी बड़ी टॉर्च ला सकते हो?"
तीनों मशाल आने तक दरवाजे पर खड़े रहे। कमरे से भागने, दौड़ने और घूमने की आवाज़ें आ रही थीं। अगर अच्युत सचमुच दरवाजे की ओर दौड़ता, तो यह कहना मुश्किल है कि वे तीनों सुरक्षित रह पाते; लेकिन अभी वह समय नहीं आया था। उसने मशाल लाने वाली महिला से अंदर आने को कहा। अच्युत का रूप सचमुच डरावना हो गया था। उसके कपड़े फटे हुए थे, जगह-जगह धूल जमी हुई थी। उसके हाथों में कांच और कीलों के छोटे-छोटे घाव थे। उनसे निकला खून उसके कपड़ों और चेहरे पर लगा हुआ था। वह अपनी ही कल्पना की दुनिया में खोया हुआ था। उसने न तो मशाल की रोशनी पर ध्यान दिया और न ही दरवाजे पर जमा लोगों पर। तीनों में से एक आगे बढ़ा और बोला,
"अच्युतराव, तुम बस लेट जाओ और चुप रहो। बेवजह खुद को क्यों थका रहे हो? क्या तुम ही कष्ट नहीं भोग रहे हो?"
अच्युत के लिए बाहरी दुनिया का कोई अस्तित्व नहीं था। ये शब्द तो उसके गाँव में भी मौजूद नहीं थे। उसी व्यक्ति ने दोनों हाथों से बाकी दो लोगों की ओर इशारा किया।
"जब उनकी पीठ हमारी तरफ होगी, तो हम आगे बढ़कर उन्हें पकड़ लेंगे," उसने कहा। "हम उन्हें बिस्तर तक घसीटेंगे और उनके हाथ-पैर चादर से बिस्तर के किनारे से बांध देंगे।"
उन तीनों को पता था कि औरतें उन्हें देख रही हैं। अकेले होने पर शायद वे इतना साहस दिखाते, इसकी कोई गारंटी नहीं थी; लेकिन अब उन्हें ज़रूरी साहस दिखाना ही था। जैसे ही अच्युत ने पीठ मोड़ी, उनमें से नेता ने कहा,
"अब!"
वे तीनों गए और अच्युत को पकड़ लिया। उसने थोड़ा संघर्ष किया, लेकिन बस इतना ही। शायद उसकी कल्पना की दुनिया में, वह जो भी काम कर रहा था, उसके लिए उसके अंगों का स्वतंत्र होना ज़रूरी नहीं था। क्योंकि वह चुपचाप उनके साथ अंदर आया, पलंग पर ऐसे लेट गया जैसे लेटा हो,

और भले ही उसके अंगों को पतली चादर से पलंग के खंभे से बांध दिया गया था, उसने कोई विरोध नहीं किया। बस उसके मुंह से गुनगुनाने की आवाज़ लगातार आती रही।
उसके साथ आई महिलाओं में से एक ने कहा, "नालिनिताई, चलो थोड़ी देर के लिए हमारे घर पर रुकते हैं - ये तीनों अभी यहीं रुकेंगी - जब तुम्हारे मेहमान आ जाएं, तब आना - हम कम से कम एक घंटे आराम तो कर सकते हैं।"
उसकी बात सच थी। इस समय अच्युत को पहचानना नामुमकिन सा हो गया था। बिस्तर के पास बैठे उन तीनों लोगों की तरह, वह भी उसके लिए अजनबी बन गई थी। वह उनके पीछे-पीछे घर में गई, रसोई में कुर्सी से पीठ टिकाकर बैठ गई, आँखें बंद कर लीं। इस समय वह कुछ भी सोचना नहीं चाहती थी। क्या हुआ था, क्यों हुआ था, आगे क्या होने वाला था... इस समय वह कुछ भी नहीं सोचना चाहती थी। उसके शरीर और मन को आराम की ज़रूरत थी।
मेरे हाथ में चाय का एक प्याला आया। उसका स्वाद अमृत के समान मीठा था।
“क्या मैं आपको एक गोली दूं? सैरिडॉन? एस्पिरिन?” उसने पूछा। नलिनी ने हाथ से मना करते हुए कहा, “इसे थोड़ी देर के लिए रख दीजिए। मुझे बताइए जब हमारे गोपालभाई जी आएं। और मैं आप सबकी मदद के लिए कैसे धन्यवाद दूं?”
"उपहारों की चिंता छोड़ो! अगर तुम अभी मदद नहीं कर सकतीं, तो कब करोगी?" उसने उसके हाथ से चाय का प्याला लेते हुए कहा, "शांत बैठो और धैर्य रखो - तुम्हारे गोपालराव आकर तुम्हें बता देंगे..."
पहली बार किसी और ने चुपके से ज़िम्मेदारी अपने कंधों पर ली थी। नलिनी पीछे की ओर झुक गई। शायद उसने थोड़ी देर झपकी भी ली थी। कई आवाज़ों ने उसे झकझोर कर जगा दिया। नीचे से एक रिक्शा की आवाज़ आई और उसी समय उसके घर से एक ज़ोरदार चीख सुनाई दी। वह अचानक अपनी कुर्सी से उठ खड़ी हुई।
उन तीनों में से एक अच्युत के तकिये के पास बैठा था। बाकी दो बाहर वाले कमरे से कुर्सियाँ ले आए थे। तीनों अच्युत को देख रहे थे। उसकी तीखी निगाहें कमरे के कोने-कोने पर घूम रही थीं। वह अजीब निगाहें अपने सामने बैठे तीनों को नहीं देख पा रही थीं... लेकिन उसकी आँखों के भाव कुछ और ही इशारा कर रहे थे। उसके मुँह से लगातार गुनगुनाने की आवाज़ आ रही थी।
"यह कितनी अजीब बात है, है ना?"
"सौभाग्य से उन्होंने कोई आपत्ति नहीं जताई... वरना मुश्किल हो जाती।"
"यह आकार में बहुत छोटा है-"

"अरे, लोग कहते हैं कि ऐसे भयंकर आदमी के शरीर में अविश्वसनीय ताकत है! लोग कहते हैं कि वे चार लोगों को भी नहीं रोक सकते!"
"यह किस तरह की चीज है?" उसने धीमी आवाज में पूछा।
मुझे नहीं लगता कि वह एक सरल स्वभाव का व्यक्ति है। वह एक ईमानदार व्यक्ति है; लेकिन वह स्पष्टवादी है। वह न तो बीच का रास्ता अपनाता है और न ही बीच में रहता है।
"जो लोग ऊपर से बहुत सीधे-सादे दिखते हैं, वे अंत में मूर्ख बन जाते हैं! वे अंततः कुछ गलत काम कर बैठते हैं!"
"मुझे ऐसा नहीं लगता... यह सच है कि हम किसी न किसी तरह की मुसीबत में हैं... अरे, पिछले एक महीने से इस घर में कुछ न कुछ चल रहा है... मैं सच में मदद करना चाहता था... लेकिन जब तक आपको बुलाया न गया हो, आप वहां जाकर दखल क्यों देंगे?"
"लेकिन वह महिला कमाल की है! इतने लंबे समय से बेचारी सब कुछ अकेले ही कर रही थी... लगता है उसे मुंबई कहीं ले जाया गया था... लगता है वह आज ही लौटी है।"
उन तीनों के बीच इस तरह की छिटपुट चर्चाएँ चलती रहीं। किसी को भी वास्तविक स्थिति का पता नहीं था। किसी को भी शारीरिक या मानसिक विकारों के लक्षणों के बारे में कुछ नहीं पता था। तो फिर वे बहस और सुनी-सुनाई कहानियों के अलावा और क्या बात कर सकते थे? दरअसल, इस अचानक हुई घटना ने उनके घरेलू कार्यक्रम को बाधित कर दिया था - लेकिन आख़िरकार, पड़ोसी होने के नाते उन्हें कुछ तो करना ही था। नलिनी के गोपालभाऊजी के आने तक उन्हें वहीं रुकना पड़ा।
उन तीनों में से एक, ग्यारह या बारह साल का बेटा, गैलरी से नीचे सड़क को देख रहा था। जैसे ही नीचे एक रिक्शा रुका और एक सज्जन बाहर निकले, उसने समझ लिया कि यही वह व्यक्ति है जिसका सब लोग इंतजार कर रहे थे। वह दौड़कर नलिनी के घर चला गया।
"पिताजी! आप तो हमेशा यही कहते रहते हैं, 'अच्छा हुआ कि वे आ गए!'"
लेकिन उस समय, वे तीनों काम में मग्न थे। अच्युत की हरकतें पूरी तरह बदल गई थीं। वह अब अपने पूरे शरीर को झटक रहा था। वह अपने अंगों को छुड़ाने के लिए संघर्ष कर रहा था। वह अपने पूरे शरीर को गद्दे से ऊपर उठा रहा था और उसे दक्षिण दिशा में पटक रहा था। गरजने की आवाज़ के बजाय, उसके मुँह से अजीबोगरीब आवाज़ें निकल रही थीं।
"पिताजी-" लड़का फिर से बोलने लगा।
"रुको! अभी हमारे पास समय नहीं है, क्या तुम देख नहीं सकते?"

“मैं बस इतना कहना चाहता था कि वे आ गए हैं!” अपना काम खत्म करके वह वापस गैलरी में चला गया। उसे ज़रा भी शक नहीं था कि अच्युत का यह गुस्सा गोपाल के आने से जुड़ा हो सकता है। गोपाल ने रिक्शा का किराया दिया और महल में आ गया। जैसे ही उसने सीढ़ियाँ चढ़ना शुरू किया, अच्युत की मेहनत बढ़ने लगी। जब वह ऊपर पहुँचा, तो गोपाल को याद आया कि भगत ने उसे अगरबत्तियाँ बाहर जलाने को कहा था। इसके लिए वह दरवाजे से पाँच कदम पहले रुक गया और अपने कंधे पर रखे थैले से अगरबत्तियाँ निकालीं। उसने अपनी जेब में रखी माचिस की डिब्बी से एक माचिस निकाली और एक अगरबत्ती जलाई। लेकिन...

अंदर के कमरे में अफरा-तफरी मच गई थी।

अच्युत के मुँह से एक लंबी, भयभीत चीख निकली। तीनों चौंककर थोड़ा पीछे हट गए। अच्युत ज़ोर से उछल पड़ा और पलंग के साथ खड़ा हो गया। उसके उलझे हुए बाल, लाल आँखें, सूजे हुए मुँह से निकलती भयानक आवाज़ें, उसके हाथ जो मानो कूदने ही वाले थे... "ओह! ओह! इन्हें रोको! इन्हें रोको!" दोनों ज़ोर से चिल्लाए... लेकिन उसके पास पहुँचना इतना आसान नहीं था। उसके शरीर पर लगातार वार हो रहे थे... हर बार वह नीचे फर्श पर पड़े भारी लोहे के पलंग से धड़ाम! धड़ाम! धड़ाम... की आवाज़ के साथ गिरता था।

नलिनी बगल वाले दरवाजे से "अग्बाई! क्या हुआ?" कहते हुए बाहर आ रही थी, तभी गोपाल अचानक जलती हुई अगरबत्ती हाथ में लिए दरवाजे से अंदर कूद पड़ा... उसी क्षण, सारी आवाजें और हलचल थम गईं। अच्युत के शरीर में जो भी ऊर्जा थी, वह पल भर में गायब हो गई। वह बेजान शरीर के साथ खड़ा था, उसके हाथ ऊपर दीवार से बंधे हुए थे... वे तीनों और गोपाल आगे बढ़े और चारों ने मिलकर पलंग को उसकी पिछली जगह पर रख दिया। गोपाल ने जलती हुई अगरबत्ती को पलंग के बगल वाली अलमारी के दरवाजे में रख दिया।

उस एक मिनट की असाधारण भागदौड़ के बाद छाई सन्नाटा भी अजीब लग रहा था। सभी लोग कमरे में जमा थे। कुछ समय पूछताछ और स्पष्टीकरण में बीता। गोपाल ने देखा कि नलिनी की हालत असहनीय हो गई थी। उसने आगे कहा, "आप सभी ने सही समय पर अच्युत नलिनी की मदद की। मैं औपचारिकतावश धन्यवाद नहीं देता। लेकिन अब मैं आ गया हूँ - मैंने सब देख लिया है। मेरी बस एक ही गुजारिश है - नलिनी दिन भर की भागदौड़ और चिंता से बहुत थक गई है। क्या आप में से कोई आज रात उसे सोने के लिए जगह दे सकता है...?"

इससे पहले कि वे अपनी बात पूरी कर पाते, दोनों ने कहा,

"ओह, दरअसल, हम यही सुझाव देने वाले थे - यह उनके लिए निश्चित रूप से सुविधाजनक होगा!"

लेकिन नलिनी को संदेह था। "गोपाल भौजी-?"
"बहन, मैं अच्युत का अच्छे से ख्याल रखूंगी। आपको उसके साथ जाना चाहिए - चैन की नींद सोइए - नहीं तो मुझे कल आपके लिए डॉक्टर बुलाना पड़ेगा!"
कमरे का दरवाजा अंदर से बंद करने के बाद, गोपाल ने सबसे पहले राखदान निकाला और घर से बाहर जाने वाले सभी दरवाजों के अंदरूनी हिस्सों और खिड़कियों के लकड़ी के फ्रेमों के अंदरूनी हिस्सों पर राख की पतली, लेकिन स्पष्ट और लगातार रेखाएं खींचीं। फिर वह एक कुर्सी पर चढ़ गया और अच्युत के तकिए के पास, तारों के बीच एक दरार में (ऐसी जगह पर जहां अच्युत आसानी से न पहुंच सके) अगरबत्ती रख दी। अगरबत्ती के धुएं में एक खास गंध थी। वह तीखी, कड़वी गंध थी, और उसमें कुछ ऐसा भी था जिसे समझाया नहीं जा सकता था; लेकिन उस धुएं का अच्युत पर पल भर में जो असर हुआ वह अद्भुत था।
अच्युत अब बेसुध पड़ा था, उसका शरीर एकदम ढीला पड़ गया था। उसकी साँसें बहुत धीमी चल रही थीं। उसके चेहरे से वो उग्र भाव गायब हो गया था। उसकी आँखें बंद थीं। उसके हाथ खुले हुए थे और ढीले-ढाले पड़े थे। गोपाल को यकीन था कि अब वह किसी के लिए खतरा नहीं है। उसने अच्युत के हाथ-पैर खोल दिए और उसे सोफे पर लिटा दिया। उसने आँखें तक नहीं खोलीं। फिर भी, अच्युत की आँखों से दो आँसू तकिए पर गिरे। शायद ये तनाव, थकान या पछतावे के कारण थे। भला ये कैसे पता चलता? अच्युत की मानवीय पहचान एक अभेद्य पर्दे के पीछे कैद हो गई थी - शब्द और दृष्टि - दुनिया को जोड़ने वाले दो सूत्र - दोनों टूट चुके थे।
उसे पूरी रात जागना था। उसने इसी तरह अपना मन तैयार किया था। अगरबत्तियों के जलने की गति को देखते हुए, ये कम से कम पंद्रह मिनट तक नहीं बुझेंगी। (किसी दुर्घटना को छोड़कर।) इसका मतलब है कि जब तक छह अगरबत्तियां खत्म होंगी, तब तक सुबह के कम से कम 2:30 बज चुके होंगे। यह धुआं, जो नाक से सांस के साथ शरीर में प्रवेश करता है, मस्तिष्क तक जरूर पहुंचा होगा। मस्तिष्क पर इसका कुछ असर जरूर हुआ होगा, जैसे किसी शांत करने वाली दवा या नींद लाने वाली दवा का - इस बिंदु तक उसका तर्क सही था; लेकिन फिर उसके मन में एक संदेह उठा - अगर कोई नींद लाने वाली गोली भी लेता है, तो उसे तुरंत नींद आने लगती है - फिर हम इतनी देर से इस अगरबत्ती की खुशबू सूंघ रहे हैं - फिर भी हमें कोई सुस्ती क्यों नहीं महसूस हो रही? पांच सेकंड में अच्युत पर इसका कितना असर हुआ होगा! इसके विपरीत, हम तरोताजा, खुश महसूस कर रहे हैं... तो फिर इन दरवाजों के अंदर राख की ये लकीरें क्यों खींची गई हैं? उसका तर्क था कि यहां रोजमर्रा के नियम लागू नहीं होते - यह घटना कुछ अलग स्तर की थी।

उसे पूरी रात जागना ही पड़ेगा। और उसे जागना ही पड़ेगा। अच्युत के बाहरी कमरे में केवल एक ही आरामकुर्सी थी - उसने उसे खींचकर अंदर के कमरे में ले आया। वह काफी आरामदायक थी - पीठ पर तकिया, शरीर पर गर्म शॉल और अन्य चीजों के साथ, उसे जल्दी ही नींद आ जाएगी - जो कि होना नहीं चाहिए था। उसने अपने सामने रखी तह वाली कुर्सी को पैर ऊपर रखने के लिए उठाया और आरामकुर्सी पर बैठ गया।

समय का व्यक्तिगत अनुमान हमेशा गलत होता है। आधा घंटा बीत चुका था, लेकिन घड़ी देखने पर मुश्किल से दस मिनट ही बीते थे। तब तक उसने घड़ी देखना बंद कर दिया था। लेकिन जब दूसरी अगरबत्ती बुझ गई, तो तीसरी अगरबत्ती रखते समय उसने घड़ी पर एक नज़र डाली। आधी रात होने में कुछ ही मिनट बचे थे।

चाहे उसने कितनी भी कोशिश की हो, नींद चुपके से आई। बारह बजने से एक मिनट पहले उसे हल्की सी झपकी आई होगी। वह अचानक चौंककर उठा। अच्युत का बिस्तर खाली था। (गोपाल को बहुत बाद में शक हुआ कि झपकी शायद स्वाभाविक नहीं थी - उस रात बहुत कम चीजें स्वाभाविक रूप से हुई थीं।) अगर अच्युत बिस्तर से उठा भी था, तो बिना कोई आवाज किए, जैसे कोई चोर उठा हो। गोपाल को न तो अपनी और न ही अच्युत की कोई चिंता थी। उनके साथ बिताए सिर्फ पांच मिनटों में ही उसे भगत की बातों पर असाधारण विश्वास हो गया था; लेकिन यह अच्युत कहाँ चला गया? वह क्या कर रहा था?

उस कमरे की हल्की रोशनी को छोड़कर घर की बाकी सभी बत्तियाँ बंद थीं। अँधेरा और सन्नाटा। अगर अच्युत हिल भी रहा था, तो उसकी कोई आवाज़ नहीं थी। गोपाल खुद बड़ी धीरे-धीरे, सावधानी से कुर्सी से उठा और बाहरी कमरे के दरवाज़े तक आया। उसे अच्छी तरह याद था कि उसने दरवाज़े और खिड़कियाँ खुद लगाई थीं; लेकिन अब दीर्घा का दरवाज़ा और दोनों खिड़कियाँ खुली हुई थीं। अच्युत कदम-कदम बढ़ाते हुए दरवाज़े की ओर बढ़ रहा था। दूर की स्ट्रीट लैंप से परावर्तित धुंधली रोशनी कमरे में आ रही थी। अच्युत खुले दरवाज़े तक पहुँचकर रुक गया। एक पल के लिए गोपाल को अजीब सा एहसास हुआ कि दरवाज़े के बाहर, दीर्घा में, हाथ भर की दूरी पर कुछ है (किसी कारण से वह उसकी आँखों को साफ़ दिखाई नहीं दे रहा था) और वह अच्युत को हाथों से बुला रहा है। अच्युत ने एक कदम आगे बढ़ाया... और "स्स" जैसी आवाज़ करते हुए पीछे हट गया। राख की निचली परत एक पल के लिए सुनहरी रोशनी से चमक उठी।

अब वह बरामदे की खिड़की के बाहर था... और अपने नाखूनों (और शायद कुछ और इशारों!) से अच्युत उस खिड़की की ओर मुड़ा... लेकिन जैसे ही उसने एक हाथ आँगन की ओर बढ़ाया, राख की

रेखा से सोने की पट्टी एक बार फिर चमक उठी... और फिर वह तीसरी खिड़की के बाहर था... (जो ज़मीन से पंद्रह फीट ऊपर थी!) जैसे ही अच्युत वहाँ मुड़ा, गोपाल ने अपना काम किया। उसने ज़ोर से खाँसा, बाहरी कमरे का दीपक जलाया... बाहर ज़्यादा ध्यान से देखे बिना, उसने जल्दी से दरवाज़ा और दोनों खिड़कियाँ बंद कर दीं। अच्युत वहाँ ऐसे खड़ा रहा जैसे अभी-अभी नींद से जागा हो। जैसे ही गोपाल ने उसका हाथ पकड़ा और उसे थोड़ा खींचा, वह चुपचाप अंदर के कमरे में आया और पलंग पर लेट गया। उसकी आँखें अभी भी बंद थीं।

जब गोपाल कुर्सी पर वापस बैठा, तो उस अनुभव का असर दिखने लगा। उसके पूरे शरीर पर पसीना आ गया। उसके हाथ-पैर कांपने लगे। भक्तों की अगरबत्तियों से अच्युत शांत हो गया था और राख की वो लकीरें उसकी रक्षा के लिए थीं... अगर भक्तों की मदद न होती, तो उस रात क्या भयानक हादसा हो जाता! अच्युत का अँधेरे में भयानक ध्यान... और वो चीज़ जो रात के अँधेरे में अँधेरे से उसके पास आई... उसे घर में आने से कौन रोक सकता था? मान लो, रात की नलिनी यहाँ अकेली होती - उस बेचारी का क्या होता!

बातचीत में भगत का नाम आते ही अच्युत अचानक अपनी निष्क्रियता से बाहर आ गया... गोपाल भगत के पास से लौटते ही भड़क उठा... क्या इससे अधिक सबूत की आवश्यकता थी कि वह किसी क्रूर बल के चंगुल में फंस गया था?

पौने चार बजे आखिरी अगरबत्ती बुझ गई। अगले डेढ़ घंटे यानी साढ़े पाँच बजे तक गोपाल के लिए बहुत मुश्किल भरे रहे। अच्युत का उस अगरबत्ती पर से नियंत्रण छूट गया था। अगर गोपाल ने फिर से रुद्र अवतार धारण कर लिया होता, तो वह लड़ नहीं पाता; लेकिन सौभाग्य से ऐसा नहीं हुआ। शायद साढ़े पाँच घंटे तक लगातार जलती अगरबत्तियों का धुआँ, जो कमरे में फैला हुआ था, अच्युत को शांत रखने के लिए काफी होता।

शाम 5:30 बजे दूधवाले, अखबारवाले और पहली शिफ्ट के कर्मचारी बाहर आने लगे और गोपाल की जिंदगी में नई जान आ गई। करीब 6-6:15 बजे नलिनी उसके लिए चाय लेकर आई। रात भर आराम करने से वह काफी चुस्त हो गई थी। उसके चेहरे की पीलापन और थकान भी काफी हद तक कम हो गई थी। चाय देते हुए उसने कहा, "आप पूरी रात सोए नहीं, है ना भाऊजी? आपकी मदद के बिना मैं क्या करती?"

"बहन, अभी तक तो कुछ नहीं हुआ। अब शुरुआत कहाँ से? अब एक काम करो। अच्युत को सोने दो। मैं अब घर जा रहा हूँ। दाढ़ी बनाने और नहाने के बाद भगत के पास जाऊँगा। कल उसे कुछ बताने का समय नहीं मिला। आज उसे पूरी सच्चाई बता दूँगा। शायद वो मेरे साथ यहाँ आएगा... मैं

आकर उसे सब कुछ बताऊँगा।" उसने अपनी जेब से राख की थैली निकाली। "और ये ज़रूरी है। ये मत पूछना कि क्या या कैसे। मैंने इस राख से दरवाज़े के फ्रेम के अंदर निशान बनाए हैं। ध्यान रखना कि किसी के पैरों से ये निशान मिट न जाएँ। अगर निशान मिट जाएँ, तो फिर से निशान बना देना।"
नलिनी के आश्चर्यचकित चेहरे को देखकर गोपाल ने कहा,
"बहन, मुझे कल रात एक अद्भुत अनुभव हुआ। मुझे पूरा विश्वास है कि अच्युत इन भक्तों की मदद से ही इस मुसीबत से बाहर निकल पाएगा। अपने बालों की चोटी बनाना, नहाना-धोना आदि पूरा कर लो... देखो कि अच्युत को चाय-कॉफी चाहिए या नहीं... लेकिन अगर वो न जागे तो चिंता मत करो... उसकी नींद सामान्य नहीं है... जब तक मैं यहाँ आकर उसे कुछ विदाई न दे दूँ, तब तक कुछ मत करना - उसके बाद कोई उसे सलाह नहीं दे पाएगा... चाहे कुछ भी हो जाए, उसे घर से बाहर मत ले जाना... और उन राख के निशानों पर नज़र रखना... हिम्मत मत हारना... इन भक्तों जैसे शक्तिशाली लोग तुम्हारी मदद के लिए मौजूद हैं..."
गोपाल जा चुका था। नलिनी उसके शब्दों के बारे में बहुत सोच रही थी। वह कल शाम अचानक प्रकट हुआ था। तब से सारी स्थिति ने कितना नया मोड़ ले लिया था! उसके मन की निराशा और हताशा दूर हो गई थी। जब वह अंदर के कमरे में दाखिल हुई, तो उसकी नज़र अच्युत पर पड़ी। साँस लेने के साथ उसकी छाती की हल्की हलचल के अलावा, वह पूरी तरह से स्थिर लेटा हुआ था। अब उसके चेहरे पर तनाव, क्रोध या वासना का कोई निशान नहीं था।
"अच्युत! अच्युत! क्या तुम इधर देख रहे हो?" उसने धीरे से पूछा। उसके चेहरे पर उसकी बातों का कोई असर नहीं दिखा। गोपाल की बातें याद करके वह रसोई में चली गई। कल दोपहर गाँव से लौटने के बाद पहली बार उसे अच्युत के अलावा किसी और चीज़ के बारे में सोचने का समय मिला था - या यूँ कहें कि वह उसके बारे में सोच रही थी। उसे आश्चर्य हो रहा था कि उसने कितनी आसानी से सब कुछ इन भक्तों के हवाले कर दिया और निश्चिंत हो गई - लेकिन इसमें बुराई क्या थी? उस जैसी साधारण स्त्री में अच्युत की बीमारी से लड़ने का ज्ञान और शक्ति कहाँ से आती?
घर में तीन सप्ताह का लंबा इंतज़ार था। वह मुंबई चली गई थी। सब्ज़ियाँ खराब हो चुकी थीं। पानी बासी और कड़वा हो गया था। खाना पकाने के बर्तन सूखकर सख्त हो गए थे। यहाँ तक कि कूड़े का ढेर भी लगा था; लेकिन उसने इस रोज़मर्रा के काम से कभी पीछे नहीं हटी। वह उठी और काम पर लग गई।
दो घंटे बाद, जब वह स्नान करके, कपड़े बदलकर और बाहर जाकर कमरे से बाहर आई, तो घर दर्पण की तरह जगमगा रहा था।

सुबह करीब नौ बजे गोपाल भगत के मठ के लिए निकल पड़ा। पहले तो उसे इस यात्रा में कोई विचित्रता महसूस नहीं हुई; लेकिन जैसे-जैसे उसे अच्युत के विचित्र अनुभव और पिछली रात की भयानक घटनाएँ याद आने लगीं, उसे सब कुछ अस्वाभाविक लगने लगा। उसे भगत किस तरह के सज्जन थे, इसका कुछ-कुछ अंदाजा होने लगा। उसके कदमों में शुरू का उत्साह कम होने लगा और उसकी चाल थोड़ी धीमी हो गई।

भगत मठ आ गया। आज भी गोपाल को अंदर कदम रखने से पहले थोड़ा मन तैयार करना पड़ता था; लेकिन आज वजह अलग थी। उसे इस बात का पूरा अंदाजा था कि वह जिस इमारत में प्रवेश कर रहा है वह कितनी असाधारण और अनोखी है।

द्वार खुला था, अंदर के कमरे का दरवाजा भी खुला था, गोपाल अंदर गया और एक कुर्सी पर बैठ गया। कुछ ही मिनटों में भगत अंदर के दरवाजे से बाहर आया। उसे देखकर उसने हल्की सी मुस्कान के साथ कहा,

"गोपाल, तुम आ गए? तुम्हारा दोस्त अच्युत क्या कह रहा है?"

गोपाल ने सिर हिलाकर कहा,

"भगवद, अगर मैं आज शाम यहां आकर तुमसे मदद न मांगता, तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकता कि कल रात क्या भयानक हादसा हो जाता!"

"अच्युत अब कैसा है?"

"अच्युत गहरी नींद में है - एक प्रकार की बेहोशी की हालत में है।"

"ठीक है। अब पहले मुझे बताओ कि कल रात क्या हुआ था..."

अपने विचारों को एक तरफ रखते हुए, गोपाल ने अच्युत के घर की अपनी शाम की यात्रा से लेकर आज सुबह तक घटी सभी घटनाओं का विस्तृत, शब्दशः वर्णन किया। भगत चुपचाप सब कुछ सुनता रहा। जब गोपाल चुप हो गया, तो उसने कहा,

"अब मुझे बताओ कि यह अच्युत इस मामले में कैसे शामिल हो गया।"

गोपाल इक्कीस मिनट तक बोलता रहा। जब उसके भाषण में पहली बार 'काली जोगिन' शब्द आया, तो भगत अचानक चौंक गया। गोपाल को लगा कि अब से वह उसकी कहानी अधिक ध्यान से सुन रहा है। गोपाल ने अपनी कहानी समाप्त की और चुप हो गया। भगत कुछ देर तक मन ही मन सोचता रहा।

"ठीक है, गोपाल, तुम जा सकते हो। मुझे अच्युत का पता दे दो। मैं आज शाम थोड़ी देर से उस पते पर आऊंगा। देखते हैं उसकी हालत कैसी है।"

"मैंने नलिनी और उसके पति को निर्देश दिया था कि वे राख की रेखाओं को वैसे ही छोड़ दें और अच्युत को घर से बाहर न निकलने दें।"
"हो सकता है कि वह इतना थका हुआ हो कि अपने हाथ भी न उठा पाए; लेकिन ये निर्देश सही हैं; मुझे नहीं लगता कि उसे दिन में ऐसी कोई परेशानी या दौरा पड़ेगा। ठीक है। आप जा सकते हैं। मैं आज शाम को वहाँ आ जाऊँगा।"
गोपाल के जाने के बाद भगत भी बाहर आ गया। उसने बस अपने पीछे दरवाजा बंद कर लिया था। भगत तुरंत गांव के बाहर स्थित प्राचीन मंदिर की ओर चल पड़ा। सड़कें सुबह के काम पर जाने वाले वाहनों से भरी हुई थीं; लेकिन लोग अनजाने में भगत के रास्ते से हटते जा रहे थे। ऐसा लग रहा था मानो उनके चारों ओर कोई जुलूस निकल रहा हो। उसे खुद इसका कोई अंदाजा नहीं था। उसने अपने लिए ऐसे विशेष व्यवहार की उम्मीद नहीं की थी।
उन्होंने पुल पार किया। वे मंदिर की ओर चल पड़े। जैसे किसी दीपक को मोटे कपड़े से ढक दिया गया हो, वैसे ही भक्तों ने अपनी सारी शक्ति को एक अपारदर्शी आवरण के पीछे छिपा लिया था। जिस मानसिक स्तर पर वे कार्य कर रहे थे, वह एक प्रकार का अदृश्यता का रूप था। मंदिर की जर्जर इमारत करीब आती गई। मानव इतिहास में संस्कृति और धन का निरंतर परिवर्तन होता रहा है। इसका प्रतिबिंब मानव शहरों, वास्तुकला और कलाकृतियों में सर्वत्र दिखाई देता है। उस समय, जर्जर इमारत भक्तों को न तो उदास और न ही डरावनी लगी। यह सांस्कृतिक यात्रा का एक पड़ाव था।
अगर उन्हें याद होता, तो वे टूटी हुई रेखाओं को जोड़कर मंदिर की मूल छवि को अपने सामने ला सकते थे; लेकिन अब उन्हें मंदिर में कोई दिलचस्पी नहीं थी। वे यह देखना चाहते थे कि पीछे वाले सराय के उस कमरे का इस्तेमाल कौन कर रहा है।
मुख्य द्वार गिर चुका था। वे उसी से अंदर दाखिल हुए। आंगन में बड़े-बड़े पत्थर पड़े थे। विद्या का मार्ग ढह चुका था। मंदिर, जो हमेशा अंधेरे में डूबा रहता था, पिछली दीवार गिरने से तेज रोशनी से जगमगा उठा। चौक पर कोई मूर्ति नहीं थी। मंदिर की पवित्रता बहुत पहले ही लुप्त हो चुकी थी। जानवरों और पक्षियों ने वहां अपना घर बना लिया था। वे मंदिर के चारों ओर घूमे और सराय की ओर चल पड़े। उन्हें एक अदृश्य धारा का अहसास हुआ, मानो धरती किसी अदृश्य हवा से कांप रही हो। कोई चीज मंदिर की इमारतों के बीच धीरे-धीरे जगह भर रही थी।
सराय की मुख्य इमारत में तीन कमरे थे। कमरों के दरवाजे बहुत पहले ही उखड़ चुके थे। सभी कमरे धूल, कूड़े के टुकड़ों, चिथड़ों, टूटे हुए खाना पकाने के बर्तनों, शतरंज के टूटे हुए टुकड़ों,

सिगरेट के टुकड़ों और चिड़ियों की बीट से भरे हुए थे। तीनों कमरे एक जैसे गंदे और रहने लायक नहीं थे। भगत बीच वाले कमरे में गया। वह अदृश्य बवंडर भी उसके पीछे-पीछे उस कमरे में आ गया था। वह दीवार से सटकर बैठ गया था। एक सीधा-सादा, नासमझ व्यक्ति यह महसूस करता कि कमरे के चारों ओर से कोई लगातार हमें देख रहा है और हमारी निगरानी कर रहा है।

भगत कमरे में दाखिल हुए और खिड़की के पास खड़े हो गए। बवंडर अब आकार ले रहा था। पहले कमरे में रखी हल्की वस्तुएँ हिलने लगीं। मकड़ी के जाले, सूती धागे और कपड़े के रेशे हवा में तैरने लगे। बवंडर तेज़ होता गया। पहले सभी वस्तुएँ गोल-गोल घूमने लगीं। बिखरी हुई सभी वस्तुएँ कमरे के बीचोंबीच जमा होने लगीं। उनका एक ढेर बन गया। फिर उन्होंने एक सीधा स्तंभ बना लिया। स्तंभ के अंत में एक छोटा, गोल गुंबद था। उसके आगे पीले-काले रंग के दो छोटे डिब्बों के ढक्कन थे... मिट्टी के बर्तन पर कागज की दो चमकदार आँखें थीं - उनके नीचे कंधों की जगह एक सपाट तख्ता था। दोनों पैरों पर शतरंज के मोहरों से बनी दो भुजाएँ थीं। भुजाओं के अंत में चींटियों के पंजे थे... बिखरी हुई, टूटी हुई वस्तुओं के पैर... अर्धमानव आकार का यह स्तंभ घूम रहा था और भगत की ओर बढ़ रहा था। आठ फीट की ऊँचाई से, भगत सिर झुकाए उन्हें नीचे देख रहे थे।

भगत ने उसकी ओर पीठ फेर ली। उसने खिड़की पर चिपके बोरे के टुकड़े को फाड़ दिया। पचास-साठ कदम दूर वह जर्जर हवेली थी। तीसरी मंजिल का आखिरी कमरा इस तरफ था। उस कमरे के बगल वाली दीवार की खिड़की यहाँ से दिखाई दे रही थी। वह खिड़की खुली हुई थी। अब उस दीवार पर तेज धूप पड़ रही थी, इसलिए अंदर कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था; लेकिन ऐसा लग रहा था मानो कोई खिड़की के ठीक अंदर खड़ा होकर सराय के बीच वाले कमरे की खिड़की को टकटकी लगाए देख रहा हो।

बाधा से निकला बागुलबुवा भगत पर झपटने की स्थिति में था - और वह भली-भांति जानता था कि अगर भगत ने बचाव का कोई साधन इस्तेमाल नहीं किया तो वह उसे गंभीर शारीरिक क्षति पहुँचा सकता है; परन्तु इस समय वह लड़ना नहीं चाहता था। उसने अपनी मानसिक स्थिति - अपनी मनोस्थिति - को बहुत संकुचित कर लिया था। जब सपाट दिखने वाली चादर को समकोण पर घुमाया गया, तो उसमें एक दिखाई देने वाली, अदृश्य बाल रेखा दिखाई दी। भगत उस स्तर से पूरी तरह गायब हो गया था जहाँ बुज़गवान उसे खोज रहे थे। अपना छोटा, कृत्रिम, अमानवीय सिर हिलाते हुए भगत कमरे से बाहर गिर पड़ा।

वे अब जर्जर महल के बरामदे तक पहुँच चुके थे। वे अब भी उसी संकरे, लगभग अदृश्य तल पर खड़े थे; लेकिन जैसे ही उन्होंने हॉल में कदम रखा, ऊपरी मंजिल के किसी कमरे का दरवाजा ज़ोर से बंद होने लगा। फिर महल भर के दरवाजों और खिड़कियों के पल्ले अपने आप खुलने लगे।

यहां जागरूकता कहीं अधिक तीव्र, व्यापक और सहज थी। यहां अदृश्य होकर घूमना असंभव था; लेकिन स्वयं को प्रकट किए बिना, संघर्ष किए बिना, चुनौती दिए बिना किले का निरीक्षण करना संभव था।

वे बैठक कक्ष में पचास-साठ कदम ही चले होंगे कि सीढ़ियों से काले रंग का तरल पदार्थ नीचे आया। पल भर में उन्होंने एक स्त्री की आकृति देखी। वह उनके रास्ते में खड़ी थी। उसका चेहरा काले पत्थर का था। उसकी आँखें सफेद सीपियों की थीं। उसके कमर तक लंबे बाल अपने आप हिल रहे थे।

"कौन?... कौन?...?" भगत उसे पीछे छोड़ते हुए तेज़ी से आगे बढ़ गया, तभी उसने उसका रास्ता रोकते हुए पूछा, "क्या?" पत्थर, ईंट, कांच, लकड़ी, शिंगल और कैंची उसकी जांच में कोई मायने नहीं रखते थे। यह भारी सामग्री मूर्तियों के अंदर सहारा देने के लिए बनाया गया ढांचा थी। वह यह पता लगाना चाहता था कि उस बुरी शक्ति ने इस संरचना में अपना जाल कहाँ और कैसे बुना है। उसने भूतल, दूसरी और तीसरी मंजिल के सभी कमरों का निरीक्षण किया।

दरवाजे खुलते और बंद होते जा रहे थे। चकाचौंध भरी रोशनी और घोर अंधेरे का अद्भुत मेल चल रहा था। वस्तुओं के आकार बदल रहे थे। रंग बदल रहे थे। अचानक चारों ओर धुआं छा गया। आग की लपटें हर जगह फैल गईं। इमारत का एक हिस्सा धधकती लाल लपटों में घिर गया। अचानक कड़ाके की ठंड की लहर हर तरफ फैल गई। अचानक बाढ़ का लाल, झागदार पानी पूरी इमारत में उठने लगा। अचानक खूंखार जानवरों की दहाड़ें हमारे कानों तक पहुंचीं। कभी ऊपर से कोई बड़ा पत्थर हमारे सिर पर गिरता। कभी हमारे पैरों के नीचे गहरी खाई खुल जाती...

इन सबके बावजूद भगत की तलाश जारी रही।

इंद्रियों और मस्तिष्क के बीच एक पर्दा खड़ा कर दिया गया था। इस बाहरी घटना का प्रक्षेपण उस पर्दे पर पड़ रहा था। यह स्पष्ट था कि यह सब कृत्रिम और भ्रामक था। इसका कोई भी अंश आंतरिक मस्तिष्क तक नहीं पहुँच रहा था। जाँच के बाद, उन्हें इस बुराई की शक्ति और व्यापकता का वास्तविक ज्ञान प्राप्त हुआ। इसकी जड़ें महल के नीचे स्थित एक पुराने, धँसे हुए कुएँ से धरती की कोख में गहराई तक चली गई थीं। वहीं से यह विषैला वृक्ष उगा था और इसकी विषैली, कीड़े-मकोड़ों से भरी, प्रदूषित और घातक शाखाएँ पूरे भवन में फैल गई थीं।

उनका सतर्क रवैया उचित था। वे लड़ाई के लिए तैयार नहीं थे और उनके पास समय भी नहीं था। उन्हें पहले अपनी रक्षा व्यवस्था मजबूत करनी चाहिए थी। अच्युत इस शक्ति के प्रभाव में था। शत्रु उनके शिविर में घुस चुका था। उस विपत्ति को पहले ही समाप्त कर देना चाहिए था।

वे धीरे-धीरे दोनों सीढ़ियाँ उतर गए।

देवताओं की गर्जनापूर्ण शक्ति सर्वत्र प्रज्वलित थी। भक्तों को कोई छू भी नहीं सकता था।

वे दरवाजे पर रुके और मुड़ गए। जाते समय वे उसे एक जोरदार थप्पड़ मारने का इरादा रखते थे। शायद वह सावधान रहे और उस पर नज़र रखे; लेकिन इतने लंबे समय से चल रही उग्रता के लिए किसी न किसी तरह की प्रतिक्रिया ज़रूरी थी।

कुछ क्षणों के लिए, सभी हलचल, ध्वनि और उथल-पुथल थम गई थी।

उस सन्नाटे में, उन्होंने बहुत धीमी, लेकिन स्पष्ट आवाज में कहा,

मैं अब जा रहा हूँ... लेकिन याद रखना... मैं वापस आऊंगा... और जब मैं वापस आऊंगा, तो मैं तुम्हें रुला दूंगा!

वे दरवाजे से बाहर निकल गए।

महल के पिछले हिस्से के सभी कमरों से कराहने और जोर-जोर से रोने की आवाजें आने लगीं।

लेकिन भगत ने पीछे मुड़कर भी नहीं देखा।

बारह बज रहे थे जब भगत मठ लौटे। दोपहर का भोजन करने के बाद उन्होंने अपना दैनिक भोजन किया। फिर उन्होंने ठंडे पानी से स्नान किया और गीले कपड़ों में ही मठ के उस कमरे का दरवाजा खोला जो हमेशा बंद रहता था। अंदर जाकर उन्होंने दरवाजा बंद कर लिया। कमरा पूरी तरह अंधेरा था। रोशनी की एक किरण भी नहीं थी। कमरे की बनावट उन्हें इतनी परिचित थी कि बिना किसी चीज को छुए ही वे कमरे के कोने तक पहुँच गए, जहाँ एक मेज पर ढकी हुई मिट्टी की पट्टिका अंगारों से जल रही थी। यदि हम भगत परंपरा के लिखित इतिहास पर विश्वास करें (और क्यों न करें? वह इतिहास दूसरों को प्रभावित करने के लिए नहीं, बल्कि स्वयं भगत के लिए लिखा गया था), तो अग्नि की यह चिंगारी हजारों वर्षों से बुझी नहीं थी। तूफान, हवा, आग, चक्रवात, बाढ़, संघर्ष, युद्ध, भूकंप... उस समय के भक्तों ने अपने जीवन की परवाह किए बिना इसे संरक्षित रखा था। उनकी निष्ठा भी एक शक्ति थी।

भक्तों ने अंगारों से एक तीली जलाई और छत से लटकते तीन दीपक प्रज्वलित किए। उस प्रकाश में कमरे का विचित्र रूप प्रकट हुआ। कमरे की छत चमकीले लाल रंग से रंगी हुई थी। उसी चमकीले लाल रंग के मोटे पर्दे, जो छत से फर्श तक पहुँचते थे, कमरे की चारों दीवारों से नीचे लटक रहे थे।

नीचे उसी रंग का कालीन बिछा हुआ था। छत पर और यहाँ तक कि नीचे कालीन पर भी, मोटी और पतली रेखाओं की जटिल आकृतियाँ उकेरी, बुनी या आपस में गुंथी हुई थीं। ये आकृतियाँ जटिल ज्यामितीय प्रमेयों की तरह थीं। जिन्हें इनका कुछ ज्ञान था, वे इनका पूरा अर्थ समझ गए होंगे। जिन्हें इनका ज्ञान नहीं था, उनके लिए यह महज़ एक सजावटी वस्तु थी।

इस कमरे का हर कण ऊर्जा से भरा हुआ था। अपार ऊर्जा स्पंदित हो रही थी। ऊर्जा को संग्रहित करने के अनगिनत तरीके हैं। तार को मोड़कर; किसी भारी वस्तु को बहुत ऊपर उठाकर; बांध की तरह पानी को रोककर; स्प्रिंग को दबाकर; या किसी विशाल पहिये को गतिमान करके। यहाँ ऊर्जा कुछ शब्द पंक्तियों की विशेष ध्वनि संरचना के अनगिनत दोहरावों से उत्पन्न और संग्रहित हुई थी, बस इसका स्वरूप सरल नहीं था। जब कोई इससे जुड़ता है, तो मन की बोध क्षमता बढ़ जाती है, अंतरिक्ष के बिंदुओं के बीच की दूरी लुप्त हो जाती है, समय के क्षणों के बीच की दूरी लुप्त हो जाती है... लेकिन यह सब ज्ञानियों के लिए है, दूसरों के मनोरंजन के लिए नहीं।

भगत अब एक आरामदायक सोफे पर बैठे थे। उनकी निगाहें सामने बनी सुनहरी रेखाओं के पैटर्न पर टिकी हुई थीं। कुछ समय बाद, उन रेखाओं में गति आ गई, वे हिलने-डुलने लगीं, बहने लगीं और पुनर्गठित होने लगीं।

भगत की आँखों के सामने पादक परिवार का महल बन रहा था। जैसे कोई शोधकर्ता जंगल से किसी अज्ञात पौधे का नमूना लाकर प्रयोगशाला में रखता है और उसे सूक्ष्मदर्शी से जाँचता है, वैसे ही भगत को उस महल में व्याप्त बुराई की विशाल शक्ति याद आ रही थी, जिसे उन्होंने अपनी स्मृति में संजो रखा था - वह उनके सामने रेखाचित्रों के रूप में आकार ले रही थी... अब वह इसका अनेक स्तरों पर अध्ययन करने जा रहे थे; वह शक्ति के केंद्रों, सामर्थ्य के केंद्रों को जानने जा रहे थे... लेकिन यह भाग उन लोगों के लिए भी है जो जानते हैं। अगले संघर्ष की उनकी तैयारियाँ शुरू हो चुकी थीं। उन्होंने कभी अपने प्रतिद्वंद्वी को कम आंकने की गलती नहीं की थी। क्योंकि हर अभियान के साथ, बुराई किसी न किसी नए रूप में सामने आती थी।

जो लोग रुचि रखते हैं, उनके लिए एक संक्षिप्त जानकारी। भगत जब यह परीक्षा ले रहे थे, तभी उन्हें किसी अज्ञात मार्ग से उस परित्यक्त महल में भटक रही 'उस' के बारे में पता चला। तहखाने के कुएँ से लेकर ऊपर धूप से गर्म कमरे तक, वह एक कुचले हुए जंगली जानवर की तरह उछल-कूद कर रही थी। भगत की परीक्षा का एक सूक्ष्म लेकिन तीखा फंदा उस तक पहुँच चुका था, जिससे वह बेहद बेचैन हो गई थी।

गोपाल नलिनी से मिलने दफ्तर गया था। अच्युत दिन भर बिस्तर पर ही पड़ा रहा। नलिनी ने उसे जगाने की कोशिश सिर्फ एक बार की, लेकिन नींद इतनी गहरी थी कि वह हिल नहीं पा रहा था। उसके चेहरे पर एक अजीब सी शांति थी। साफ था कि वह किसी मानसिक परेशानी से ग्रस्त नहीं था। भगत ने कहा था कि वह शाम को आएगा। नलिनी ने तब तक कुछ न करने का फैसला किया। अच्युत का शरीर इतना थका हुआ था कि एक दिन के उपवास से भी कोई खास फर्क नहीं पड़ता।

पिछली रात की घटना ने पड़ोसियों की दूरी को तोड़ दिया था। दोपहर में, दो पड़ोसी उसके घर आए थे। अब वह एक ही बात सोच रही थी - अच्युत की बीमारी में उसकी क्या गलती थी? शुरुआत में उसने दूसरों को बताने में इतनी शर्म क्यों महसूस की थी? अब उसने उन्हें शुरू से लेकर अब तक की सारी बातें बता दीं। उन्होंने न केवल उसके प्रति सहानुभूति दिखाई, बल्कि हर तरह से मदद करने के लिए भी तैयार थे।

लगभग छह बजे गोपाल दफ्तर से अच्युत के घर आया। सूरज डूब चुका था। कमरे के कुछ हिस्से में अंधेरा था। गोपाल ने सोचा कि अगर भगत अंधेरा होने से पहले आ जाए तो अच्छा होगा। वह अच्छी तरह जानता था कि अगर पिछली रात अगरबत्तियाँ न होतीं तो उसे नींद ही न आती। वह बार-बार कमरे से दीर्घा में और फिर वापस कमरे में आता-जाता रहा।

दिन ढल रहा था। बत्तियाँ जल रही थीं। भगत अभी तक क्यों नहीं आया? वह मन ही मन बेचैनी से सोच रहा था। लगभग 7:30 बजे, उसने गैलरी में एक और व्यर्थ चक्कर लगाया और अंदर के कमरे में आ गया। हमेशा की तरह, उसने अच्युत पर एक सरसरी नज़र डाली और वहीं जम गया।

अच्युत की आंखें चौड़ी खुली हुई थीं और उस पर टिकी हुई थीं।

पल भर में गोपाल के शरीर की सारी ऊर्जा खत्म हो गई। उसे लगा जैसे वह गिर जाएगा। अच्युत ने आँखें खोलने के अलावा कुछ नहीं हिलाया था। उस समय उसकी आँखें शांत थीं; लेकिन भला क्या गारंटी हो सकती थी जब क्रोध की लाल आग पिछली रात की तरह उनमें फिर भड़क उठेगी?

"गोपाल? गोपाल?" अच्युत बहुत धीरे से बुदबुदाया।

उसके कदम लड़खड़ा रहे थे, लेकिन गोपाल को आगे बढ़ना ही था।

"गोपाल? तुम यहाँ कैसे हो?" अच्युत ने उसी कर्कश आवाज़ में कहा। "अच्युत, तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है-" अच्युत ने बड़ी देर से स्वाभाविक आवाज़ में बात की थी! गोपाल मन ही मन सोच रहा था; लेकिन अगर उसे थोड़ी सी भी तसल्ली हुई, तो वो क्षणिक थी। अच्युत की आँखें अचानक चौड़ी हो गईं। उनके बीच की क्षणिक पहचान गायब हो गई। उसके चेहरे की, उसके पूरे शरीर की

मांसपेशियाँ कसने लगीं, अकड़ने लगीं। ऐसा लग रहा था जैसे किसी भी पल वो बिस्तर से कूदकर खुद पर हमला कर देगा...

"गोपाल!" भगत की आवाज़ दरवाज़े से आई। गोपाल मुड़ा। नलिनी भी अंदर के कमरे से दरवाज़े पर आ गई थी। अच्युत की नज़र धीरे-धीरे घूमी और दरवाज़े पर खड़े भगत पर टिक गई।

भगत के कंधों पर कढ़ाईदार शॉल थी। उसने अब उसे उतार दिया। उसने उसे मोड़ने के लिए अपने सामने पकड़ा। एक पल के लिए उसने उसे हवा में लहराया। फिर, शॉल के दोनों सिरों को पकड़कर उसने ज़ोर से आवाज़ निकाली, "शॉल हवा में!" इतनी ज़ोर से कि गोपाल और नलिनी भी चौंक गए और एक पल के लिए अपनी आँखें बंद कर लीं। जब उन्होंने आँखें खोलीं, तो भगत कमरे में आ रहा था। अच्युत की आँखें बंद थीं।

भगत अच्युत के पलंग के बगल में एक तह वाली कुर्सी पर बैठे थे। उनके पीछे गोपाल और नलिनी थे। बगल वाले कमरे में तीन-चार लोग थे; लेकिन भगत एकाग्रचित्त निगाहों से अच्युत को निहार रहे थे। देखने में तो उनकी निगाहें सरल लग रही थीं। लेकिन भगत की निगाहें, उनकी श्रवण शक्ति, उनकी गंध, उनका स्पर्श, सब कुछ गहन था। उनकी निगाहें अच्युत को कई स्तरों पर परख रही थीं - शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक। फिर उन्होंने अपना दाहिना हाथ हल्के से उनके माथे पर रखा। उस हाथ के स्पर्श से ही अच्युत के पूरे शरीर में चेतना, उनकी पवित्रता जैसी ऊर्जा का प्रवाह होने लगा।

उस शक्ति के स्रोत में अच्युत के मन में व्याप्त सभी अशुद्ध, विषैले, घातक, अमानवीय और छलपूर्ण प्रभाव समाहित थे। मानो किसी असहनीय आघात से व्याकुल होकर नलिनी अचानक एक कदम पीछे हट गई और आँखें बंद करके दीवार के सहारे खड़ी हो गई। गोपाल को लगा कि वह इतने लंबे समय से अकेले ही असहनीय तनाव झेल रही थी, वह अचानक उसे छोड़कर चला गया था और यह उसकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। उसने नलिनी के धैर्य और साहस की इतनी सराहना पहले कभी नहीं की थी जितनी इस क्षण की।

अच्युत ने अपनी आँखें खोलीं। उसके चेहरे पर थकावट भरी, लेकिन प्रसन्न मुस्कान थी। गोपाल कुछ कहने के लिए आगे बढ़ने ही वाला था कि भगत ने हाथ से इशारा करके उसे वहीं रुकने को कहा। क्योंकि एक मिनट के भीतर ही अच्युत के चेहरे पर वह उदासी फिर लौट आई, उसकी आँखों में पहचान की चमक एक बार फिर फीकी पड़ गई, उसके चेहरे और शरीर की मांसपेशियाँ शिथिल हो गईं। गोपाल का मन समुद्र के ज्वार-भाटे के समान था। ज्वार-भाटा शुरू होने पर भी पानी एकसमान रूप से पीछे नहीं हटता... वह बार-बार रेत और चट्टानों पर प्रहार करता रहता है। जिस बोझ के नीचे

अच्युत दबा हुआ था, वह धीरे-धीरे ज्वार-भाटे की तरह कम होता जा रहा था। कुछ मिनटों बाद उसका चेहरा फिर शांत हो गया... यह प्रक्रिया दो-तीन बार दोहराई गई - लेकिन विस्मृति की अवधि कम होती जा रही थी और अंत में वह पूरी तरह से मुक्त हो गया।

अब भगत ने हाथ से इशारा करके गोपाल को आगे बढ़ने को कहा।

गोपाल उसके बगल में पलंग पर बैठ गया और उसके कंधों पर हाथ रखते हुए बोला,

"अब कैसा महसूस कर रहे हो, अच्युत?"

"मैं बहुत कमजोर महसूस कर रहा हूँ - मुझे क्या हो गया है?"

"आपको क्या याद है?"

"अरे! अरे! यह तो सपना ही होगा..."

□□□

4

अच्युत दफ्तर में बैठा था। वह गोपाल से बात करना चाहता था। लेकिन जब उसे होश आया, तो उसे एहसास हुआ कि गोपाल किसी ज़रूरी काम से बाहर गया है और कम से कम दो दिन तक वापस नहीं आएगा। उसने नलिनी से बात नहीं की थी; लेकिन कल शाम से ही उसे कुछ अजीब सी अनुभूतियाँ होने लगी थीं। सामने देखते ही उसे अचानक ऐसा लगा जैसे उसकी आँखों के सामने पूरी सृष्टि पर धुएँ जैसा कोई पतला पर्दा छा गया हो। रंग फीके पड़ रहे थे, आवाज़ें धीमी हो रही थीं, गंध की तीव्रता कम हो रही थी, छूने पर ऐसा लग रहा था जैसे उंगलियों पर कुछ लिपटा हो... यह बदलाव केवल बाहरी सृष्टि में ही नहीं था, बल्कि उसके भीतर, उसके मन की गहराई तक पहुँच गया था। उसके विचारों की स्पष्टता भी कम हो गई थी, उसकी बुद्धि भी कुंद हो गई थी। विचार उलझ गए थे। उसके मन में कुछ भी स्थिर नहीं था। उसे उम्मीद थी कि रात भर आराम करने के बाद यह अनुभूति थोड़ी कम हो जाएगी, लेकिन यह उम्मीद व्यर्थ साबित हुई। उसे समझ नहीं आ रहा था कि उसके साथ क्या हो रहा है - लेकिन इस अज्ञात विकार की तीव्रता बढ़ती जा रही थी। दरअसल, वह दफ्तर में केवल गोपाल से मिलने ही आया था। उसे धुंधला-सा याद था कि पिछली शाम गोपाल ने प्रतिरोध के बारे में, किसी की मदद लेने के बारे में कुछ कहा था। यही उसके मन में एकमात्र धुंधली सी उम्मीद थी। जब उसे एहसास हुआ कि गोपाल नहीं आया, तो उसका सब्र टूट गया। वह बस अपनी डेस्क पर बैठा था। दफ्तर का कमरा इतना अंधेरा हो गया था जैसे शीशे पर चढ़े किसी तैलीय कीड़े का प्रतिबिंब हो। साहब के बुलावे पर उसे विदाई देने आया चपरासी ने उसका चेहरा देखते ही जल्दी से अंदर जाकर साहब को बताया कि वह ठीक नहीं लग रहा है... उसे अंदर मत बुलाओ और उससे कुछ मत पूछो। क्योंकि उस नासमझ सीधे-सादे आदमी ने भी महसूस कर लिया था कि अच्युत की खुली आँखों के पीछे कुछ अलग, अपरिचित और थोड़ा डरावना छिपा हुआ है।

समय बीतने के साथ-साथ, बाहरी दुनिया पर पड़ने वाली यह छाया और भी गहरी होती चली गई। ऐसा लग रहा था मानो उसके चारों ओर एक पतली लेकिन अपारदर्शी परत बन रही हो। कमरे का आकार धुंधला और विकृत होता जा रहा था, आवाज़ धीमी होती जा रही थी; यहाँ तक कि हवा भी नीरस और बासी लगने लगी थी...

अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति से वह कार्यालय का समय समाप्त होने तक वहीं रुका रहा और फिर घर लौट आया। अगर बस का रूट, स्टॉप और रास्ते उसे परिचित न होते, तो वह घर न पहुँच पाता। अब उसे एक तरह की तीव्र, कड़वी उदासी महसूस होने लगी थी। वह सोचता रहा कि वह पहले भी ऐसी किसी जगह पर गया है; लेकिन उसे दिन, समय या जगह याद नहीं आ रही थी। किसी तरह वह घर पर

बिस्तर पर गिर पड़ा। और उसी क्षण, उसके आसपास की रोज़मर्रा की दुनिया, वह दुनिया जिसे वह जानता था, उस अपारदर्शी पर्दे के पीछे गायब हो गई।

उसके मन का पूरा हिस्सा किसी अजनबी चीज़ से भरा हुआ था। (पर आप अजनबी कैसे कह सकते हैं? कोई न कोई संबंध, पहचान, जान-पहचान तो होनी ही चाहिए, है ना?) उसकी पहचान, उसका अस्तित्व, उसकी आत्मा सिकुड़ गई थी, और असहाय होकर एक कोने में दुबक गई थी, जिसे अनदेखा करना नामुमकिन था। उसके मन की स्क्रीन पर भयानक, फिर भी पूरी तरह से समझ से परे घटनाएँ घट रही थीं। वह उनका अर्थ नहीं समझ पा रहा था, क्योंकि उनका दायरा मानवीय इंद्रियों की क्षमता से कहीं अधिक व्यापक था। जब उसने अपनी बंद आँखों को उंगलियों से दबाया, तो उसकी आँखों के भीतर लहरें दिखाई दीं - नीले और बैंगनी रंग के चमकते गोले - लेकिन क्या वह उनका असली रंग समझ पा रहा था? एक ज़बरदस्त धमाका हुआ... क्या आप उस आवाज़ का स्वर बता सकते हैं? मन के तराजू का आखिरी अंक पार हो गया और वह रुक गया...

उसके शरीर की बाहरी क्रियाएँ सहज आवेग के तहत चल रही थीं। उसे सुबह, दोपहर, शाम, दिन, रात का कोई आभास नहीं था। उसकी आँखों के सामने, मानो अलग-अलग कोणों से देखा जा रहा हो, अनेक दृश्य थे। मानव आकृतियाँ, लेकिन आकार में अत्यंत छोटी। स्थान और समय, सब कुछ अस्त-व्यस्त था। दृश्य बदल रहे थे, गतिमान थे, आगे-पीछे हो रहे थे, छोटे-बड़े हो रहे थे... उसने किसी भी चीज़ को समझने की कोशिश करना छोड़ दिया था... क्योंकि यह उसके बस की बात नहीं थी... ऐसा लग रहा था जैसे किसी को उसकी स्मृति को खंगालना होगा... इन सभी दृश्यों में एक ही सूत्र दिखाई दे रहा था... दर्द, क्रूरता, तबाही, विनाश...

और अचानक पर्दा धुंधला होने लगा। उसके चारों ओर का काला घेरा खुलने लगा। निर्वासित बाहरी दुनिया धीरे-धीरे उसके हाथ में वापस आने लगी। एक साथ नहीं, बल्कि लहरों की तरह, धीरे-धीरे। जब वह पूरी तरह से मुक्त हुआ, तो उसकी आँखों के सामने एक चेहरा था।

एक बूढ़ा, लेकिन खुशमिजाज, मुस्कुराता हुआ चेहरा।

गोपाल भी वहीं था, गोपाल उसकी ओर बढ़ रहा था, उसने अपना हाथ उसके कंधे पर रखा।

"अब आपको कैसा लग रहा है?" वह पूछ रहा था।

मुझे बहुत कमजोरी महसूस हो रही है...

"आपको क्या याद है?"

"अरे! अरे! यह तो सपना ही होगा -"

और फिर वह बुजुर्ग सज्जन आगे आए।

"अच्युत, हे भक्त! मुझे नहीं पता तुम्हारे साथ क्या हुआ... लेकिन तुम जो अब हमारे पास लौट आए हो, इन भक्तों की सहायता से आए हो... अब ये तुमसे सीधे बात करेंगे..."
भगत अच्युत के सोफे के बगल में कागज की तह वाली कुर्सी पर बैठ गया।
"अच्युत, तुम एक बहुत बड़े खतरे से बच गए हो। खतरा पूरी तरह टला नहीं है - लेकिन अब मेरी मदद से तुम इसका सामना कर पाओगे। दरअसल, तुम अब बहुत थक गए हो, तुम्हें आराम की जरूरत है... लेकिन समय भी कीमती है... हमें अभी और जाल लगाने चाहिए। अगर हम इस पल के बारे में सोचने और आराम करने में समय बिताएंगे, तो यह काम और भी मुश्किल हो जाएगा... इसलिए अब मैं तुमसे एक कप दूध पीने के लिए कहूंगा... मैं तुमसे कुछ सवाल पूछूंगा... फिर मैं तुमसे दो घंटे आराम करने के लिए कहूंगा... और फिर हमें चलना होगा..."
"कहाँ?" अच्युत ने अस्पष्ट स्वर में पूछा।
"उस वीरान महल में। जहाँ वह काला योगी रहता है। जहाँ से यह सारा मामला शुरू हुआ।"
नलिनी दूध लेकर अंदर आई। अच्युत की स्वाभाविक आवाज़ कई दिनों बाद उसके कानों तक पहुँच रही थी, लेकिन एक बार फिर उसका मध्यमवर्गीय मन भीड़, झिझक और दूसरों के सामने शर्म से चूर-चूर हो गया। सिर न उठाने के कारण उसके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला।
अच्युत ने दूध का प्याला नीचे रखते ही भगत ने कहा,
"अच्युत, क्या तुमने अपने सपने में वह परित्यक्त हवेली देखी?"
"हो सकता है मैंने इसे देखा हो... लेकिन मुझे याद नहीं है-"
"क्या आपको कोई और देखने लायक जगहें नज़र आईं?"
मैंने तीन ऊंचे पेड़ों को एक दूसरे के बगल में खड़े देखा।
उनके अन्य प्रश्न लोगों के पहनावे, भाषा, कपड़ों आदि के बारे में थे। उन्होंने लगभग 9:30 बजे का समय बताया।
"अच्युत, अब लेट जाओ, अगर तुम सो जाओ तो अच्छा होगा। नहीं तो, लेट जाओ और आराम करो। मैं तुम्हें लगभग 11:30 बजे बुलाऊंगा।"

□□□

5

जब गोपाल टैक्सी लेने गया, तो उसने अच्युत के लिए एक कप गर्म चाय बनाने को कहा था। जैसे ही वह जाने वाला था, नलिनी दरवाजे पर खड़ी थी। चारों ओर के अंधेरे ने शायद उसे कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। उसने अच्युत के हाथ को हल्के से छुआ और कहा,

"जल्दी लौट आना।" आवाज़ बहुत धीमी थी। बैठ गई थी। शायद रोने की वजह से। वह स्तब्ध थी। उसे भगत या गोपाल को धन्यवाद देने का तरीका भी नहीं सूझ रहा था।

उन्होंने मंदिर से कुछ आगे टैक्सी छोड़ दी। उस संकरी सड़क पर वापस मुड़ने के लिए टैक्सी को दो-तीन बार पीछे की ओर जाना पड़ा। टैक्सी की लाल बत्ती गायब होते ही भगत ने उन दोनों से कहा, "अच्युत तुम्हें यहाँ इसलिए लाया है क्योंकि यह बेहद ज़रूरी था - और गोपाल तुम्हें इसलिए लाया है क्योंकि जब मेरा ध्यान कहीं और होता है तो उसे तुम्हारी देखभाल करने के लिए किसी की ज़रूरत होती है। अब मेरी बात ध्यान से सुनो। कुछ लोग इन बातों पर विश्वास करते हैं, कुछ नहीं; लेकिन वे एक बात नहीं समझते - किसी घटना की सच्चाई या झूठ उनके विश्वास या अविश्वास पर निर्भर नहीं करता। क्योंकि उनके विश्वास में कोई शक्ति नहीं है। विश्वास में शक्ति के बिना उसका बाहरी दुनिया पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। बात यह है कि अब अपने सभी पूर्वाग्रहों को दूर कर दो। हम एक बहुत ही खतरनाक जगह पर जा रहे हैं। आँखें कुछ नहीं देखेंगी। स्पर्श कुछ महसूस नहीं करेगा; लेकिन यह मत सोचो कि वहाँ कुछ भी नहीं है। इसके विपरीत, यह मत मानो कि जो कुछ भी तुम देखते हो, सुनते हो या अपने हाथों से महसूस करते हो वह सच ही है। क्योंकि आसपास का वातावरण बोझिल, विकृत है - अनुभव की संदर्भ रेखाएँ यहाँ टूटी हुई या मिट गई हैं - अब स्थिर खड़े हो जाओ और मुझे देखो - मेरी आँखों में देखो..."

इससे पहले कि उनमें से कोई कुछ समझ पाता, वे दोनों सम्मोहन की अवस्था में चले गए। भगत ने एक आदेशात्मक स्वर में एक विशेष शब्द कहा, "जब तुम यह शब्द सुनोगे, तो तुम खुद को पहचान लोगे। तुम होश में आ जाओगे। अब भूल जाओ कि मैंने तुम्हें यह कहा है... ठीक है... अब जाग जाओ..."

उन्हें बिल्कुल भी अंदाजा नहीं था कि क्या हुआ था। उन्हें तो यह भी पता नहीं चला कि दो मिनट बीत चुके हैं।

"चलो चलते हैं," भगत ने कहा।

अच्युत इस इलाके की बदनामी से वाकिफ था। उसकी निगाहें अपने पैरों पर टिकी थीं। अँधेरा होने के बावजूद, नीचे का रास्ता पक्का था, उस पर न पत्थर थे, न गड्ढे, न दरारें। नीले-काले आसमान से

हल्की-हल्की तारों की रोशनी नीचे आ रही थी। उसकी आत्मा को पूर्ण स्वतंत्रता का अनुभव हो रहा था, मानो वह किसी अंधेरी कोठरी से निकल आया हो। वह इस आनंद में तृप्त होकर चल रहा था।
गोपाल उत्सुकता से चारों ओर देख रहा था। कल से उसने इस खंडहर मंदिर और उस वीरान किले के बारे में कितनी अजीबोगरीब बातें सुनी थीं! जीवन में ऐसी बातें अक्सर सुनी-सुनाई बातों से ही पता चलती हैं - इन्हें खुद अनुभव करने का मौका बहुत कम मिलता है। उसे मौका मिल गया था - वह इसका पूरा फायदा उठाने वाला था।
वृक्ष का अंतिम पर्दा भी हट गया। गोपाल विस्मय से अपने सामने देखता रहा। इस खूबसूरत संरचना को अजेय मंदिर कैसे कहा जा सकता है? सफेद दीवारें आसमान छू रही थीं। दीवारों के ऊपर तेल के दीयों की एक जगमगाती कतार थी। विशाल मुख्य द्वार खुला था। अंदर हजारों दीपों से जगमगाती मालाएँ थीं। प्रांगण और हॉल भक्तों से भरे हुए थे। आरती की सामूहिक गूंज उस तक पहुँच रही थी... उसे अंदर जाकर दर्शन करने ही थे... वह मुख्य द्वार की ओर मुड़ा भी...
मेरे कानों में धमाके जैसी आवाज सुनाई दी।
सामने की सारी बत्तियाँ बुझ चुकी थीं। तीखी आवाज़ें गायब हो गई थीं। चहल-पहल वाला आँगन और हॉल गायब हो गए थे। पूजा की आवाज़ भी गायब हो गई थी।
सामने पत्थरों का ढेर था। दीवारें ढह रही थीं। आंगन वीरान था। शिखर गिर चुका था। मंदिर के गुंबद के चारों ओर एक विशालकाय रात्रि पक्षी जैसा कुछ मंडरा रहा था... वह 'श्श्श' की आवाज के साथ रात के अंधेरे में गायब हो गया।
भगत अपना कंधा हिला रहा था। गोपाल को मूर्खता का एहसास हुआ।
भगत ने कहा, "गोपाल, इसमें तुम्हारी कोई गलती नहीं है कि तुम धोखा खा गए। जो लोग कहते हैं कि मैं धोखा दे रहा हूँ, वे खुद उस जाल में फंसकर भटक जाते हैं। आगे बढ़ो। सावधान रहना। मैं तुम्हारी मदद के लिए यहाँ हूँ!"
जैसे ही मंदिर की पिछली दीवार पीछे हटी, मंदिर की घंटियाँ बजने लगीं; लेकिन अब उनमें कोई संयम या पवित्रता नहीं थी। वे किसी पागल की तरह बेकाबू होकर रस्सी खींच रही थीं। उनका मन यह कल्पना भी नहीं कर पा रहा था कि उस मूर्तिविहीन गुफा में क्या हो रहा होगा। भक्तों के स्पर्श से प्रेरित होकर, वे दोनों दृढ़ता से खंडहर मंदिर की ओर पीठ करके सामने वाली सड़क पर चल पड़े।
अच्युत, जो काफी देर से चल रहा था, महल के बरामदे पर पहुँचकर नीचे देखा और फिर सिर उठाया। यह जगह पूरी तरह से भय से भरी हुई थी। यहाँ जो कुछ हुआ था, उस विचार मात्र से ही उसकी आत्मा काँप उठी, उसकी धड़कनें पंख की तरह धीमी हो गईं। और इस जगह पर, यह भक्त

उसे आधी रात के सबसे अशुभ समय में ले जा रहा था। भला वह उसका मित्र या सहायक कैसे हो सकता है जो किसी को ऐसे खतरे में डाल दे?

गोपाल कह रहा था कि इन्हीं भक्तों की मदद से वह उस भयानक पिंजरे से बच निकला था; लेकिन ये भक्त कौन थे? इनके बारे में असली जानकारी किसे पता थी? क्या गोपाल को पता थी? वे जादू-टोना, जंतर-मंतर आदि के लिए मशहूर तो हो सकते हैं, लेकिन क्या किसी को पता था कि वे इनका इस्तेमाल कैसे करते हैं? उन्होंने तो बस इतना ही कहा है - 'मैं तुम्हें वहाँ ले जाऊँगा, फिर आना' - और क्या? भला वे यहाँ की बुरी शक्ति के एजेंट कैसे नहीं हो सकते?

बरामदे में खड़े अच्युत ने भक्तों पर तिरछी नज़र डाली। (खुले में भी रोशनी कम थी; बरामदे में तो और भी कम थी। अच्युत ने सोचा भी नहीं कि इतनी कम रोशनी में वह ये सब कैसे देख पा रहा है।) भक्त का चेहरा अब बदल रहा था। उसके होठों पर बनावटी मुस्कान आ गई। उसके निचले होठों पर दांत दिख रहे थे। उसकी आँखों में शरारत भरी नज़र थी। अच्युत को यकीन हो गया कि महल के द्वार की दहलीज ही सीमा रेखा है। सीमा रेखा के अंदर का स्थान आवेशित और खतरनाक था। अगर उसे भागना था, तो उसे इसी क्षण हिलना होगा। यह हरकत अप्रत्याशित, तेज़ और ज़ोरदार होनी चाहिए। गोपाल को भी चेतावनी देनी होगी। यह भक्त उसका पीछा ज़रूर करेगा - उसे भी उसे ज़ोरदार प्रहार करना होगा। उसने अपनी दाहिनी मुट्ठी भींची।

"गोपाल! भागो! खतरा!" उसने गहरी सांस ली और भाग निकला...

उसके कानों में एक तेज़ आवाज़ गूंजी। उसकी आँखों के सामने एक चकाचौंध भरी रोशनी चमकी। एक पल के लिए वह अंधा और बहरा हो गया।

फिर उसकी आँखें धीरे-धीरे खुलीं। उसे अपने सामने कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। अँधेरे की वजह से नहीं, बल्कि सामने कोई रोशनी न होने की वजह से। उसने अपने हाथ के स्पर्श से महसूस किया कि उसके बाएँ और दाएँ लोग थे। भगत और गोपाल, ज़ाहिर है। उसके विचार तेज़ी से चलने लगे। उसे एहसास हुआ कि उसे बेवकूफ बनाया गया था। कितनी आसानी से उसे बेवकूफ बना दिया गया!

"अच्युत, मैं तुम्हें वही बता रहा हूँ जो मैंने गोपाल को बताया था। जो कुछ भी हो रहा है उसके लिए तुम बिल्कुल भी दोषी नहीं हो। अगर हमारी सारी निष्ठाएँ, अच्छे-बुरे के सारे संकेत हमारे मन में दृढ़ता से बैठे हों, तो ये भ्रामक शक्तियाँ हम पर कोई असर नहीं करेंगी, और अगर करेंगी भी तो वो लंबे समय तक नहीं टिकेंगी... तब डरने का कोई कारण नहीं है... चलो..."

किले और उसके आसपास का इलाका पूरी तरह बदल गया था। अच्युत-गोपाल जैसे अज्ञानी को भी एहसास हो गया था कि उनके आसपास मंडरा रही कोई भी बुरी शक्ति अब वहां नहीं थी। ऐसा लग

रहा था मानो उस शक्ति ने अपने चारों ओर फैले फंदों और जालों को समेट लिया हो। वह एक कोठरी में छिप गई थी।

अब वह एक पुराना, कुछ उदास सा, लेकिन साधारण सा वीरान महल था। किसी को भी यह शक नहीं होता कि यहाँ कुछ अलौकिक शक्तियाँ सक्रिय हैं, कुछ अजीबोगरीब घटनाएँ घट रही हैं। ऐसा लगता था कि अब वह शक्ति यह देखने के लिए इधर-उधर घूम रही है कि भगत और उनके साथी आगे क्या करेंगे, और घटनाओं के घटित होने का इंतज़ार कर रही है।

"अंदर आओ, अंदर आओ-" भगत ने कहा और हॉल में प्रवेश किया। उनके कंधे पर एक शबनम का थैला लटका हुआ था। उन्होंने उसमें से एक छोटी टॉर्च निकाली और उसकी रोशनी चारों ओर फैलाई। वे सामने वाले कमरे की ओर चल पड़े। कमरे में पहुँचकर उन्होंने थैले से एक मोमबत्ती निकाली। गोपाल ने उसे एक लकड़ी से जलाया। भगत ने मोमबत्ती को मेज पर रख दिया और टॉर्च गोपाल को सौंप दी।

"नीचे वाले कमरे में देखो - अगर तुम्हें एक-दो कुर्सियाँ अच्छी हालत में दिखें, तो उन्हें यहाँ ले आओ।" उनके आत्मविश्वास भरे शब्दों ने गोपाल का साहस वापस जगा दिया था।

उसने टॉर्च उठाई। कमरे के दरवाज़े खुलने और बंद होने की आवाज़ें आईं, सामान इधर-उधर ले जाने की आवाज़ें सुनाई दीं। पाँच-दस मिनट के भीतर, वह दो तह करने वाली कागज़ की कुर्सियाँ घसीटते हुए कमरे में लौटा। भगत ने टॉर्च ली। उसने गोपाल से दोनों कुर्सियाँ खोलकर दीवार के सहारे रखने को कहा। वह खुद एक लकड़ी की कुर्सी पर बैठ गया।

"हम यहाँ किसलिए आए हैं?" अच्युत ने अंततः पूछा।

"उसने आपको धोखे से कुछ कबूलनामे वाले समझौते करने के लिए मजबूर कर दिया है। यह सब यहीं, इसी कमरे में हुआ है। अब हम उस समझौते को रद्द करने जा रहे हैं।"

लेकिन यहाँ हमारे अलावा कोई नहीं है!

"वे आएंगे! उन्हें पता है कि हम यहां हैं! वे देखना चाहते हैं कि हम क्या कर रहे हैं! और अगर वे नहीं आए, तो हम उन्हें घसीटकर लाएंगे! चलो दो-चार मिनट इंतजार करते हैं..."

एक पल के लिए अच्युत को भगत से ईर्ष्या हुई। उनके शब्दों में कितना आत्मविश्वास झलक रहा था! लेकिन अगले ही पल उसे एहसास हुआ - उस आत्मविश्वास के पीछे शक्ति थी - और वह शक्ति उन्होंने वर्षों के कठिन अभ्यास से हासिल की थी।

बूढ़ा आदमी वहीं बैठा रहा, बारी-बारी से उन तीनों को देखता रहा। लगभग पाँच मिनट बाद, भगत ने गहरी साँस लेते हुए उठ खड़ा हुआ। वह कमरे की दीवार से पीठ टिकाकर दरवाजे की ओर मुँह

करके बैठ गया। उसने दरवाज़े को हथेलियों से तिरछा करके मुँह के सामने रखा। उसकी गहरी साँसों से उस शंकु के आकार के मुँह से कोई आवाज़ तो निकल ही रही होगी; लेकिन वह इतनी धीमी थी, इतनी धीमी कि अच्युत और गोपाल उस आवाज़ की हल्की-सी कंपन ही महसूस कर पा रहे थे। वह हर पंक्ति पर तीस सेकंड, कभी-कभी एक मिनट तक गाता। फिर उससे ठीक ऊपर वाली पंक्ति पर... हर वस्तु, हर मिश्रित संरचना की अपनी एक स्वाभाविक लय होती है... अगर कोई ऐसी ध्वनि उत्पन्न हो जो उस लय के साथ सामंजस्य बिठाए, तो उस संरचना में अनुनाद उत्पन्न होता है... अगर ध्वनि उस लय पर स्थिर हो जाए, तो उस संरचना में कंपन फैलती है... अगर इस स्व-संवर्धन प्रक्रिया को समय रहते नहीं रोका गया, तो उस संरचना के टुकड़े बिखर जाते हैं...

भगत की आवाज़ अब सुनाई दे रही थी। महल में कोई वस्तु कंपन कर रही थी - कभी कोई गिलास हिल रहा था... कभी कोई दरवाज़ा हिल रहा था... भगत का ध्यान गहन और संक्रामक था... सफलता सबसे शुद्ध और स्थिर ध्वनि उत्पन्न करने पर निर्भर थी।

उनकी आवाज़ ऊँची होती जा रही थी। एक सुर के बीच में, अच्युत की बाईं बांह का निचला हिस्सा, कोहनी से नीचे तक, फड़फड़ाने लगा। हालाँकि उन्होंने उसे दूसरे हाथ से कसकर दबा रखा था, फिर भी फड़फड़ाना बंद नहीं हुआ। यह तभी रुका जब भगत की आवाज़ और ऊँची हो गई।

वे एक मध्य स्वर पर रुक गए। उन्हें कुछ आभास हुआ होगा। उन्होंने अपनी स्थिति बदली, पीठ सीधी की, गहरी साँस ली और उस स्वर को गाया। अब उनके स्वर की शक्ति बढ़ गई थी। हालाँकि स्वर सरल था, फिर भी उसमें निचले और ऊपरी सप्तकों की विशिष्ट कंपन थी। इसके अलावा, यह एक सुरीली ध्वनि थी। उन स्वरों की गूँज कमरों से आ रही थी। महल के हर कोने से आवाज़ आ रही थी। ध्वनि का यह विशाल प्रचंड शोर ऊपर-नीचे गूँज रहा था...

ऊपरी मंजिल से चरमराहट की आवाज़ आई। किसी के कदमों की आहट सुनाई देने लगी। कोई सीढ़ियों से तेज़ी से नीचे आया... वे दूसरी सीढ़ी से नीचे उतरकर हॉल में आ गए...

कुछ काला सा कमरे के दरवाजे पर लुढ़कता हुआ आया और गिर पड़ा... हर पुकार के साथ, वह काला शरीर अकड़ता जा रहा था... उसके हाथ-पैर कमजोर हरकत कर रहे थे... वह एक हाथ उठाकर इशारा कर रहा था, "रुको! रुको!"... भगत ने आवाज़ बंद कर दी। आसपास का शोर धीरे-धीरे शांत हो गया, मानो कोई तूफान थम गया हो। अच्युत गोपाल ने अनजाने में अपनी सांस रोक ली थी। उसका शरीर अकड़ गया था... अब वह ढीला पड़ गया। (और अच्युत अब तक अर्जुन के पांच नोक वाले शंख के वर्णन को झूठा मानता था!) रुकी हुई सांस एक गहरी आह के साथ बाहर निकली।

कमरे के दरवाजे के पास खड़ी काली आकृति अब धीरे-धीरे हिलने लगी। उसके हाथ-पैर सीधे हो गए, उसके पैर पास आए, उसके हाथों ने ज़मीन को छुआ और वह आकृति सीधी हो गई।
अच्युत को अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हो रहा था।
वह बहुत बूढ़ा आदमी था, जिसके बाल सफेद थे, उसने गंदे काले कपड़े पहने थे और उसका शरीर थका हुआ था।
वह इतना चौंक गया मानो उसका कोई कदम चूक गया हो। यहाँ ज़रूर कुछ गड़बड़ है। उसने भगत की ओर देखा। भगत उस बूढ़े आदमी को बड़े ही परेशान चेहरे से घूर रहा था।
"अंदर आइए! दादाजी, अंदर आइए!" भगत ने आखिरकार कहा।
वह था।
"क्या तुम्हारे जैसे भले लोगों के लिए यह व्यवहार उचित है?" बूढ़ा व्यक्ति गुस्से से भरा हुआ था। उसकी आवाज कर्कश और थकी हुई थी।
"तुम ऐसा कर रहे हो? तुम एक गरीब आदमी को परेशानी में डाल रहे हो?"
"दादाजी, अंदर आइए! मैं आपको दोबारा नहीं बताऊंगा!" भगत की आवाज़ तेज़, कठोर और तीखी हो गई थी। दस सेकंड रुकने के बाद, उसने अपने दोनों हाथ वापस अपने मुंह पर रख लिए। बूढ़े व्यक्ति को उसकी हरकतों का मतलब समझ आ गया था।
"नहीं! नहीं!" वह उठने की कोशिश करते हुए बोला, कमर झुकाकर कमरे में चला गया। वह भगत द्वारा दिखाई गई कुर्सी पर बैठ गया। मोमबत्ती की रोशनी में अच्युत अब उसे साफ़ देख पा रहा था। सिर के झड़ते बालों से लेकर उम्र के साथ कांपती नीली नसों वाले हाथों तक; पानी से भरी आँखें, खुरदरी दाढ़ी वाले गाल; टूटे दांतों के कारण खोखला हो चुका मुँह; गर्दन पर धागे जैसी नसें; एक गंदा काला कोट (गले तक बंद), उसी रंग की सिकुड़ी हुई, दागदार, ढीली पतलून... नंगे पैर... नंगे पैर... लेकिन यह कैसे? वह तो उनके सामने बैठा था... तो फिर उसके पैर उल्टे कैसे हो सकते हैं? उल्टे पैर... उल्टे पैर।
उस व्यंग्यात्मक हंसी की आवाज इतनी अचानक आई कि अच्युत चौंक गया और पीछे हट गया।
खी: ! खी: ! खी: !
बूढ़ा आदमी अचानक खड़ा हो गया और मुस्कुराने लगा।
"क्या तुमने पैर देखे, अच्युत? क्या तुमने उन्हें देखा?" वह अच्युत से बार-बार हंसते हुए पूछ रहा था। तो वह इशारा उसी के लिए था! उल्टे पैर भूतों का संकेत होते हैं... राक्षसों का संकेत! अच्युत ने अपना सिर उठाया और बूढ़े आदमी को देखा। उसकी आकृति पानी में परछाई की तरह हिल रही

थी... वह छोटी और बड़ी होती जा रही थी... उसकी आँखों की थकान गायब हो गई थी... उनमें काली गुफाएँ बन गई थीं। अंदर से लाल चिंगारियों का फव्वारा फूट रहा था... हाथों की जगह अब पंजे थे... पंजों के सिरे पर नुकीले, रंगे हुए नाखून थे... वे हाथ लंबे होते जा रहे थे... उसकी गर्दन की ओर बढ़ रहे थे...

एक और तेज रोशनी और चटकने की आवाज हुई। एक पल के लिए कमरा अंधेरा सा हो गया। दस-पंद्रह सेकंड बाद, उसने खुद को संभाला। तब अच्युत ने देखा कि काले रंग का योगी उसके सामने कुर्सी पर बैठा हुआ था।

काले कपड़ों में लिपटी एक दुबली-पतली आकृति। अब उसका घूंघट सिर से हट गया था। उसके चेहरे पर (या उसके चेहरे की जगह जो भी था) एक साया पड़ गया था। केवल दो आँखें दिखाई दे रही थीं। उनमें जलते लाल अंगारे छुपाए नहीं जा सकते थे। वे अच्युत पर टिकी हुई थीं। भगत या गोपाल उसके लिए कोई मायने नहीं रखते थे। उसने अपनी गंदी आवाज़ में कहा,

"बिना बुलाए आप यहां क्यों आए?"

अच्युत ने असहाय होकर भगत की ओर देखा। उसने धैर्य रखने का इशारा हाथ से किया और चुप रहने का संकेत देते हुए अपनी उंगली होठों पर रख ली।

भगत ने शांत स्वर में कहा, "मैं उसे ले आया हूँ।"

वह एक घायल बाघिन की तरह उनकी ओर मुड़ी।

"और तुम कौन होते हो किसी ऐसी बात पर गपशप करने वाले जो सच नहीं है?"

जैसे ही उसकी निगाह उसके चेहरे से हटी, अच्युत को अचानक ठंड लगने लगी, मानो वह किसी धधकती भट्टी से दूर हट गया हो। उसके पूरे शरीर पर पसीना आ गया।

"देखो! मैं तुम्हारे ठीक सामने हूँ!" भगत बहुत ही सरल और स्वाभाविक स्वर में बोल रहे थे।

"आपकी नज़र इतनी कमज़ोर क्यों है?"

वह गुस्से से अपना सिर हिला रही थी।

मैं भगत हूँ।

"भगत?!" यह स्पष्ट था कि वह चौंक गई थी।

लेकिन मैंने तो इसे पहले ही बर्बाद कर दिया था...

"नहीं, तुमने मुझे धोखा नहीं दिया। उसने पलायन के उस रास्ते को अपरिहार्य मानकर स्वीकार कर लिया था; लेकिन एक अन्य भक्त ने उसकी जगह ले ली। अब मैं उस स्थान पर हूँ। और मैं अतीत का

हिसाब चुकता करूँगा। इससे पहले, तुमने इस अच्युत को धोखा दिया और उससे कोई समझौता स्वीकार करवा लिया... तुम्हें उसे उस बंधन से मुक्त करना होगा। इसीलिए मैं उसे यहाँ लाया हूँ।"
"आप भक्तगण इन मूर्ख लोगों से इतने तंग आ चुके हैं! ये लोग अपनी ही इच्छाओं, वासनाओं और प्रलोभनों के जाल में उलझे हुए हैं - आप लोग इतने चिंतित क्यों हैं?"
"मुझे इतनी चिंता इसलिए है क्योंकि भक्त बनने से पहले मैं भी एक भोली-भाली, नासमझ इंसान थी। और जिस काली योगिनी के शरीर में आप रह रहे हैं, वह भी पहले एक नासमझ इंसान ही थी। उन्हें अपनी मर्जी से जीवन जीने का पूरा अधिकार है... अगर वे कोई गलती करती हैं, तो उन्हें उसका प्रायश्चित करना होगा... आपको इसमें दखल देने का कोई अधिकार नहीं है... उन पर लगे प्रतिबंध हटा दीजिए।"
"अपनी खुशी के लिए, अपने मनोरंजन के लिए, अपने मनोरंजन के लिए, अपने मनोरंजन के लिए, मैंने उसकी ओर मुड़कर यह कहा, पहले उसके सिर में झुनझुनी होने लगी और फिर उसकी पूरी गर्दन सुन्न हो गई। वह कठपुतली की तरह अपनी कुर्सी से उठ खड़ा हुआ... उसे यह भी नहीं पता था कि वह क्या करने वाला है... और उसे यह भी नहीं पता था कि वह आगे क्या करेगा... शायद वह सर्कस में भालू की तरह छोटे-छोटे उछल-कूद करते हुए नाचेगा... शायद वह सड़क पर नाचने वाले की तरह कूदेगा... शायद वह पिटे हुए कुत्ते की तरह लोगों पर झपटेगा, भौंकते हुए! भौंकते हुए! गुर्र!... (ये विचार और ये गंदी तस्वीरें उसके दिमाग में कैसे आ रही थीं? ये किसके दिमाग में आ रही थीं?) वह उसकी बेरहमी से मुस्कुराती हुई शक्ल से अपनी नज़रें नहीं हटा पा रहा था... उसने तो अपना एक पैर हवा में भी उठा लिया -
भगत ने अपने दोनों हाथों के पंजों को अपनी आंखों के सामने आगे-पीछे हिलाया।
उसके दिमाग पर से बंधन हट गए। वह अचानक अपनी कुर्सी पर वापस गिर पड़ा। भगत उठकर उसकी ओर मुड़ी।
"अब मैं तुम्हें तीसरी और आखिरी बार बता रहा हूँ... इस मामले में अपनी पकड़ ढीली करो। अगर तुम्हें नहीं पता, तो मैं तुम्हें बताता हूँ... मैं आज सुबह इस किले में गया था... मैंने तीसरी मंजिल के कमरे से लेकर तहखाने के कुएँ तक हर हिस्सा देखा है... और अब मैं सारी तैयारियों के साथ आया हूँ..."
जो कुछ हुआ वो पलक झपकते ही हो गया। एक पल पहले वो कुर्सी पर बेसुध बैठी थी। अगले ही पल, जैसे कोई काला धमाका हुआ हो, उसने अच्युत और गोपाल पर झपट्टा मारा... भगत की निगाहें एक पल के लिए उससे हटीं... उस पल भर में वो परछाई की तरह गायब हो गई।

भगत के चेहरे पर एक कड़वी मुस्कान थी।
"वह तुम्हें इतनी आसानी से नहीं छोड़ेगी, अच्युत। ठीक है। मुझे महल में ही रहना होगा। जब तक उसका काम पूरा नहीं हो जाता, मैं बाहर नहीं आना चाहती। तुम दोनों अच्युत के घर जाओ और वहीं रहो और यह सामान ले जाओ।"
उसने अपने थैले से कोयले की एक मटकी और अगरबत्ती निकाली। उसने उन्हें एक पता लिखा हुआ कागज का टुकड़ा भी दिया। अब, बोलते समय उसका चेहरा बहुत गंभीर हो गया।
"तुम सुन सकते हो उसने क्या कहा। हमारे अतीत के एक भक्त को उससे लड़ना पड़ा। और वह असफल रहा... उसे अपनी जान देनी पड़ी... हर संभावना पर विचार करना चाहिए... अगर मैं कल सुबह तक वहाँ नहीं पहुँचा, तो मुझे असफल समझ लेना... ऐसे में तुम्हारा खतरा और भी बढ़ जाएगा... सुबह होते ही इस पते पर आ जाना। तुम्हें हर संभव मदद मिलेगी।"
उसने दोनों के कंधों पर हाथ रखकर उन्हें दरवाजे की ओर धकेल दिया।
“अभी जाओ। इंतज़ार मत करो,” उसने कहा। उन दोनों को कुछ कहने का भी समय नहीं मिला। भगत का वचन तोड़ना नामुमकिन था। क्या भगत आखिरी विदाई दे रहा था? उनकी मुलाकात को अभी चौबीस घंटे भी नहीं बीते थे!
"क्या हम किसी भी तरह से आपकी मदद नहीं कर सकते?" अच्युत ने कहा।
"नहीं, लेकिन यह अच्छी बात है कि आपने इसके बारे में सोचा। मेरे लिए अच्छे इरादे रखें। उनकी शक्ति को कम मत आंकिए। और अब जाइए। मुझे काम पर जाना है।"

□□□

6

जब वे तीनों टैक्सी में चले गए, तो नलिनी गैलरी में खड़ी थी। अब उसे उस खाली घर में अकेले जाने से डर लग रहा था। उन तीन कमरों में कितनी अजीब और भयानक चीजें घटी थीं! उसकी हालत देखकर पड़ोसी ने कहा,

"नालिनिताई, जब तक उनमें से कोई एक वापस नहीं आ जाता, तब तक तुम हमारे साथ क्यों नहीं रुक जाती? तुम सो सकती हो - आराम के लिए बस इतना ही काफी है।" उसने बाहरी दरवाजा बंद किया और उनके पीछे-पीछे घर में चली गई।

सच कहूँ तो, गोपाल ने पिछली रात जो अगरबत्तियाँ जलाई थीं, उनकी तीखी, कड़वी गंध तीनों कमरों में फैल गई थी। ज़रूर उसी ने जलाई होंगी; लेकिन उसका सिर अभी भी चकरा रहा था। दरवाजों और खिड़कियों के नीचे खींची गई राख की लकीरों में भी गंध थी। सुबह घर की सफाई करते समय उसने झाड़ू से उन राख की लकीरों को बिखेर दिया था। गोपाल उन्हें दोबारा खींचना भूल गया था - उसने उसे इस बारे में याद भी नहीं दिलाया था।

बाहर खुली हवा में उसे बहुत हल्कापन महसूस हो रहा था। अब वह पड़ोस के घर में आकर वहाँ एक पलंग पर लेट गई थी। रात काफी ढल चुकी थी। सभी लोग जल्दी-जल्दी अपने-अपने घरों को चले गए थे। बत्तियाँ झट से बुझा दी गई थीं, चारों ओर सन्नाटा पसरा हुआ था।

नलिनी पिछले दो दिनों की घटनाओं को याद कर रही थी। हालात अचानक उसके नियंत्रण से बाहर हो गए थे। वह महज एक तटस्थ दर्शक बनकर रह गई थी; लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि अच्युत को मदद मिल रही थी।

हाँ या ना? लेकिन फिर उसे इतनी बेचैनी क्यों हो रही थी? भगत के घर में आने पर वह वहाँ क्यों नहीं रुकी? वह एकदम पीछे वाले कमरे में क्यों भाग गई? रात में जब अच्युत उस खतरनाक जगह की ओर जा रहा था, तब उसके होंठों से सांत्वना या हौसला बढ़ाने का एक भी शब्द क्यों नहीं निकला? वह उनमें से किसी से भी नज़रें क्यों नहीं मिला पा रही थी? अचानक उसके मन में अपने घर के प्रति यह अजीब सी नफरत कैसे पैदा हो गई?

यह सब गलत था... कहीं न कहीं कोई घोटाला हुआ था...

यह उसका आखिरी विचार था, जो उसके मन में, स्वयं से स्वतंत्र रूप से आया था। पल भर में, उसने अपनी पहचान खो दी। आसपास का दृश्य घूमता हुआ, दूर जाता हुआ, एक बिंदु में विलीन होकर गायब हो गया। आवाज़ धीमी पड़ गई, गायब हो गई, भार का अहसास भी चला गया। सारी इंद्रियाँ क्षीण हो गईं।

उसका चेहरा कठोर हो गया था। उसकी आँखें चौड़ी खुली हुई थीं। उसकी साँसें तेज़ चल रही थीं। उसके अंग अनैच्छिक रूप से हिलने लगे थे। कुछ उसके शरीर में प्रवेश कर गया था - और वह ज़बरदस्त शक्ति उसके शरीर में समा नहीं पा रही थी। वह अचानक बिस्तर पर उठ बैठी। सौभाग्य से, वहाँ कोई नहीं था जो उसका भयानक रूप देख सके। उसके कंधे से गिरते बिखरे बाल, उसकी लाल आँखें, उसकी उठी हुई नाक, उसके कसे हुए दाँत, उसकी उंगलियाँ जो खुलती और बंद होती थीं, हुक की तरह अकड़ी हुई, उसका शरीर... उसे देखने वाला कोई भी चीखकर भाग जाता।

वह कमरे से निकलकर गैलरी में आई। वह अपने घर के दरवाजे पर खड़ी हो गई। मानो कोई धुंधली सी याद उसे वहाँ खींच रही हो। उसने कुंडी खोली और दरवाजे को ज़ोर से अंदर की ओर धकेल दिया। (सौभाग्य से, दरवाजे के अंदर राख का कोई निशान नहीं था - वरना वह अंदर नहीं जाती - बाहर की अंधेरी रात में अंदर और भी अंधेरा होता।) वह अंदर आ गई। उसे अपने पीछे दरवाजा बंद करने की भी ज़रूरत महसूस नहीं हुई। उसे घर की बत्ती जलाने की भी ज़रूरत महसूस नहीं हुई। वह लड़खड़ाते कदमों से तीनों कमरों से गुज़र रही थी। अगर रास्ते में कोई कुर्सी या स्टूल आता, तो वह उसे पैर से ज़ोर से लात मारती... बीच-बीच में वह दरवाजे, अलमारी से टकराती रही - लेकिन उसे अपने कंधों और पैरों के दर्द का ज़रा भी एहसास नहीं था।

एक जगह रुकना मुमकिन नहीं। अंधकार को कदम-दर-कदम रौंदते हुए आगे बढ़ने वाले इस शरीर को आराम नहीं मिलता। उसके माथे से पसीना बह रहा था। जब उसने अपना हाथ माथे पर फेरा, तो कुंकवा की झनझनाहट उसके माथे पर गाढ़े पेस्ट की तरह फैल गई।

अंदर - बाहर - अंदर से बाहर।

सेकंड, मिनट, घंटे बीतते जा रहे थे।

अचानक वह एकदम स्थिर हो गई। वह कोने की ओर घूर रही थी, उसका सिर नीचे झुका हुआ था, मानो वह कुछ देख रही हो। फिर वह खुद की ओर मुड़ी। उसके होंठों पर एक शरारती मुस्कान आ गई।

एक-एक कदम बढ़ाते हुए, जैसे कोई खूंखार जानवर अपने शिकार का पीछा कर रहा हो, वह बाहरी दरवाजे की ओर बढ़ी। वह दरवाजे के अंदर खड़ी हो गई, उसके हाथ उछलने की मुद्रा में ऊपर उठे हुए थे। उसकी आँखों में एक शैतानी चमक थी। उसकी साँसें तेज़-तेज़ चल रही थीं।

रिक्शा नीचे रुक गया।

ऊपर देखते हुए, गोपाल और अच्युत नीचे उतर रहे थे।

पड़ोसी भी गहरी नींद में सो रहे थे। अच्युत के घर में जो कुछ भी हुआ था, वह इतना अजीब था कि सभी लोग बेचैन थे। जैसे ही उन्हें रिक्शा की आवाज सुनाई दी, एक-दो लोग आँगन में आ गए। अच्युत को सामान्य व्यवहार करते देख उनकी चिंता दूर हो गई। (उसके घर में प्रवेश करने के बाद, कुछ जिम्मेदारी स्वतः ही उन पर आ गई थी। अब वह ठीक लग रहा था - वह जिम्मेदारी खत्म हो गई थी।) पड़ोसी नलिनी को जगाने गया। (वह अपने लोगों के साथ अपने घर गया हुआ था।) लेकिन नलिनी बिस्तर पर नहीं थी। तकिया कोने में पड़ा था। चादर फटी हुई थी। चादर ज़मीन पर पड़ी थी। ये सब संकेत थे कि कोई जल्दी में उठा और चला गया था।

वह सीढ़ियों के नीचे अच्युत और गोपाल का इंतज़ार कर रहा था। "अब कैसा महसूस कर रहे हो?" अच्युत से पूछा गया सवाल औपचारिक था। अच्युत ने हाथ हिलाकर जवाब दिया। "नलिनी कहाँ है?" उसने पूछा। "वह यहीं सो रही थी – लगता है अभी-अभी घर गई है," पड़ोसी ने कहा।

अब तक गोपाल घर के सामने पहुँच चुका था। अच्युत के घर का दरवाज़ा आधा खुला था - लेकिन अंदर कोई रोशनी नहीं थी। चारों ओर अँधेरा छाया हुआ था। नलिनी के बारे में जितना वह जानता था, उससे उसने कभी नहीं सोचा था कि वह सुरक्षा को लेकर इतनी लापरवाह होगी। उन अँधेरे कमरों को देखकर उसके पूरे शरीर में एक चुभन सी महसूस हुई। यह साधारण सा घर अब नहीं रहा। यहाँ असाधारण और भयानक घटनाएँ घटी थीं और शायद फिर से घटित होंगी। आखिर किस बात ने उन्हें इस अंत तक पहुँचाया? अंत में सावधानी बरतना ही एकमात्र कारगर उपाय साबित होगा।

जब वह दरवाजे पर खड़ा था, तभी अच्युत पीछे से आया और जब गोपाल "अच्युत! अच्युत!" कह रहा था, तभी वह "नलिनी? नलिनी?" कहते हुए घर के अंदर चला गया। जैसे ही उसने दरवाजे के अंदर कदम रखा, तभी अंधेरे में से कोई जानवर जैसी चीज तेजी से निकली और उस पर जोर से झपटी... "क्या? क्या?" कहते-कहते अच्युत गिर पड़ा... अंधेरे में कुछ तेजी से हिल रहा था। एक आवाज अच्युत की थी। एक और आवाज भी थी; लेकिन वह किसी इंसान की आवाज नहीं लग रही थी।

गोपाल ने इस क्षण जितनी तेज़ी से कभी नहीं सोचा था। उसका दिमाग बिजली की गति से चल रहा था। यह स्पष्ट था कि नलिनी स्वयं उस घातक आवेग का शिकार हो गई थी। और अच्युत के लिए जो उपाय अपनाया गया था, वही उसके लिए भी अपनाना होगा।

सौभाग्यवश, उसने वे अगरबत्तियाँ अच्युत को नहीं दी थीं। उसने उन्हें अपने पास ही रखा था। उसने उनमें से एक अगरबत्ती जलाई - लेकिन उसका हाथ कट रहा था; एक अगरबत्ती टूट गई; दूसरी भी बुझ गई; तीसरी अगरबत्ती से अगरबत्ती जलाई गई।

गोपाल ने उसे हथियार की तरह सीधा अपने सामने पकड़े हुए आत्मविश्वास से घर में प्रवेश किया। पचास सेकंड के भीतर ही संघर्ष की आवाजें बंद हो गईं। "पिताजी! पिताजी!" अच्युत बड़बड़ाते हुए खड़ा हुआ और दीपक जलाया।

पाइप नीचे फर्श पर अस्त-व्यस्त अवस्था में पड़ा था।

उसके बाल बिखरे हुए थे; उसकी साड़ी धूल और तेल से सनी हुई थी; उसके ब्लाउज की एक आस्तीन फटी हुई थी और लटक रही थी; उसके माथे पर कुंकवा के दाने थे; उसका चेहरा पसीने से तर था - लेकिन उसके चेहरे का भाव इन सब से बिल्कुल अलग था - उसका चेहरा एकदम शांत था।

"गोपाल! यह क्या है!" अच्युत हांफते हुए बोला।

“पहले मेरी भाभी को पलंग पर सुला देते हैं,” गोपाल ने कहा। उसने अगरबत्ती अलमारी के दरवाजे में लगा दी। दोनों ने नलिनी को उठाया और पलंग पर लिटा दिया। अच्युत गीले कपड़े से उसका चेहरा पोंछ रहा था; गोपाल सभी दरवाजों के अंदर राख की लकीरें खींच रहा था। सभी लकीरों को ध्यान से देखने के बाद, वह अंदर आया और बैठ गया। उसने घड़ी देखी और पाया कि सुबह के सवा दो बज रहे थे। भोर होने में कम से कम चार घंटे बाकी थे। उसे वह रात याद आई जो उसने अच्युत के तकिये के पास जागते हुए बिताई थी - यह उसी का दोहराव था।

“अच्युत,” गोपाल ने कहा, “कुछ बातों पर स्पष्ट रूप से बोलने का समय आ गया है। मुझे लगता है। जिस समय तुम पीड़ित थे—सीधे शब्दों में कहें तो, जब तुम पर प्रेतबाधा थी—उस दौरान तुम्हारी भाभी इस घर में तुम्हारे साथ अकेली थीं। उन पर भी वही प्रेतबाधा आ गई है... कोई नहीं बता सकता कि कब और कैसे... लेकिन भगत उस समय तुम्हारी मदद के लिए मौजूद थे—हम यह गारंटी नहीं दे सकते कि वे अब भी मौजूद होंगे। उनके अंतिम शब्द एक बड़ा संकेत थे... क्या तुम्हें याद है?... इसलिए अब हमें भोर तक भाभी पर कड़ी नज़र रखनी होगी... और हमें उम्मीद रखनी होगी कि भगत भोर में लौट आएंगे...”

□□□

7

भगत बरामदे के दरवाजे पर तब तक खड़ा रहा जब तक अच्युत और गोपाल नज़र से ओझल नहीं हो गए। फिर वह अंदर की ओर मुड़ा। अच्युत को जिन तीन ऊँचे पेड़ों की धुंधली सी याद थी, वे उसके दिमाग में घूम रहे थे। महल के तहखाने में एक कुआँ था। वहाँ से, उन तीन पेड़ों के बीच से बाहर की ओर एक गुप्त रास्ता खुलता होगा... इस महल में जो भी छिपा हुआ था, उसे महल से बाहर निकलने के सभी रास्ते बंद करके, महल के अंदर ही कैद करके नष्ट करना था; लेकिन वह अकेला था। उसे इस समय जितना ज़रूरी किसी भरोसेमंद सहायक की ज़रूरत महसूस हो रही थी, उतनी पहले कभी नहीं हुई थी।

इतने लंबे समय से उसने अपनी निरियों को उलझाए रखा था। अब इसकी कोई आवश्यकता नहीं थी। एक साधारण मानसिक क्रिया से उसने उन आवरणों को अपने ऊपर से हटा दिया। उसने अपने थैले से एक बहुत पतली लाल कढ़ाई वाली शॉल निकाली और उसे दोनों कंधों पर डाल लिया। उसी थैले में एक धागा था जो साधारण सूत का बना हुआ प्रतीत होता था। जैसे ही वह थैले के शुद्ध, निर्मल आवरण से बाहर निकला, धागे से (या उसके चारों ओर) एक नीले-हरे रंग का प्रकाश चमकने लगा। यह इस बात का संकेत था कि आसपास का वातावरण दुष्ट, विकृत ऊर्जा से भरा हुआ था।

भगत नीचे के सभी कमरों में घूम रहा था। जहाँ भी उसे बाहर की ओर जाने वाले दरवाजे और खिड़कियाँ दिखाई देतीं, वह वहाँ इस धागे का एक टुकड़ा रखकर उन छेदों को बंद कर देता। फिर उसने यही काम पहली मंजिल पर और उसके ऊपर वाली मंजिल पर भी किया। सबसे ऊपर वाली मंजिल पर धागे पर कोई रोशनी नहीं पड़ी - जिसका मतलब था कि वह नीचे तहखाने में था।

भगत नीचे आया। वह उस जगह आया जहाँ पहले रसोईघर हुआ करता था।

दरवाजा जमीन में गड़ी बड़ी-बड़ी क्षैतिज तख्तियों से बना था, अब वे तख्तियां सड़ चुकी थीं, उनमें दरारें पड़ गई थीं और वे मुड़ गई थीं। उसने दोनों हाथों से दो तख्तियों को उठाया और एक तरफ फेंक दिया। फर्श की सीढ़ियाँ नीचे धंस गई थीं।

भगत, बाहरी कमरे से मोमबत्ती लेकर, सीढ़ियों से नीचे उतरा। सीढ़ियाँ दीवार से बिल्कुल सटी हुई थीं। दीवारें नम, काई से ढकी और बदबूदार थीं। सीढ़ियाँ भी कीचड़ से सनी हुई थीं। लगभग बीस सीढ़ियाँ उतरने के बाद, वह तहखाने में पहुँच गया।

तहखाने के बीचोंबीच एक कुएं का काला मुँह था।

भगत के मन में डर का नामोनिशान भी नहीं था। भला किसे डर लगेगा? उसे जो अपनी जान बचाने के लिए संघर्ष कर रहा हो। भगत ने तो पहले ही अपना तन, मन और धन-दौलत कुर्बान कर दी थी।

उन्हें इस जीवन में या परलोक में किसी बात का डर नहीं था। उनकी देखभाल करने वाले दूसरे लोग थे। दुर्घटना के समय पायलट एक छोटा सा बटन दबाता है - एक यंत्र उन्हें बाहर फेंक देता है, छाता खोल देता है और सुरक्षित रूप से ज़मीन पर उतार देता है। उन्हें अपनी सुरक्षा की चिंता नहीं करनी पड़ती। भगत के मन में भी ऐसा ही एक बटन था। अगर हालात बिगड़ते, अगर सब कुछ बेकाबू होने के संकेत मिलते, तो यही वह बटन था जिसका इस्तेमाल करना था। (जैसा कि उनके एक साथी भगत ने बड़ी बेबसी से किया था।)

भगत ने मोमबत्ती को कुएँ के किनारे पर रख दिया। वह स्वयं वहीं अपनी गोद में बैठ गया। उसने अपने थैले से मोटे कागज की एक मानव आकृति काटी थी। उसके पैरों के नीचे एक खाली कागज रखा था। जैसे ही उसने उसे मोड़ा, आकृति फर्श पर सीधी खड़ी हो गई। चूंकि भगत स्वयं सुरक्षित था, इसलिए उसे इस बात का कोई अंदाजा नहीं था कि आसपास के क्षेत्र में कौन सी विनाशकारी शक्तियां सक्रिय हो गई हैं। जैसे ही वह अपने थैले की सुरक्षा से बाहर आया, कागज की गुड़िया धुएँ में बदल गई, जलकर राख हो गई और भस्म हो गई।

बाहर तीन पेड़ों के बीच का रास्ता बार-बार उसके मन में आ रहा था। वह किसी तरह के प्रलोभन से जोगिनी को महल में लाना चाहता था ताकि वह तुरंत कुएँ का रास्ता रोक सके। उसने ऊपर वाले तल पर इस्तेमाल किए गए धागे में से एक धागा लिया, उसे मोमबत्ती के बीचोंबीच गाँठ बाँधी और मोमबत्ती को क्षैतिज रूप से पकड़कर धीरे-धीरे धागे को नीचे कुएँ में डाल दिया। धागे के चारों ओर हरे-नीले रंग की चमक फैल गई। न केवल धागा, बल्कि मोमबत्ती भी अछूती रही।

कुआँ लगभग छह फुट व्यास का था। जैसे-जैसे मोमबत्ती दीवार पर नीचे सरकती गई, उसकी रोशनी से टाइलों का नम, काई से ढका किनारा रोशन होता गया। रोशनी में आते ही उन्होंने देखा कि कुएँ की दीवार में कई छोटी-बड़ी दरारें थीं। शायद वे नीचे चट्टान में बहुत अंदर चले गए थे। वहाँ अनगिनत छिपने की जगहें थीं। उन्हें कुएँ में उतरने का विचार छोड़ना पड़ा। उन्होंने धीरे से मोमबत्ती को ऊपर खींचा और किनारे पर वापस रख दिया।

इसमें कोई शक नहीं था कि कई सालों से इस वीरान किले में मंडरा रही क्रूर शक्ति, एक काली आत्मा की तरह, ने किले की जगह को अपने हिसाब से 'बनाया' था। चाहे वह कहीं भी 'हो', यह किला उसके लिए सबसे सुविधाजनक जगह होगी। उन्होंने अनुमान लगाया कि वह यथासंभव लंबे समय तक इस किले पर अपना कब्ज़ा बनाए रखने की कोशिश करेगी। और एक और सिद्धांत यह था कि (उसे अब तक उनकी उपस्थिति का एहसास हो गया होगा) वह यह जानने की उत्सुकता में कुएँ के

पास मंडरा रही होगी कि वे अब क्या करने वाले हैं। कम से कम, इस तरह अनुमान लगाकर एक नया प्रयास करने में कोई हर्ज नहीं था।
उसने थैले से एक छोटी शीशी निकाली। उसमें काले रंग के छोटे-छोटे गोल मोती थे, बिल्कुल काले बोरी के मोतियों जैसे। उसने चिमटी से पच्चीस-तीस मोती उठाए और एक खास लहजे में कुछ बोलते हुए उन्हें कुएँ में फेंक दिया। सारे मोती एक पल के लिए हरे-नीले प्रकाश में चमके और फिर पानी में गिर गए। पल भर में वे पानी में घुल गए और उनकी एक बहुत पतली परत पानी पर फैल गई।
कुआँ कई पक्षियों के फड़फड़ाने की तरह फड़फड़ा रहा था। ऐसा लग रहा था मानो कोई भारी लेकिन फुर्तीली चीज़ पत्थरों की दरारों के सहारे कुएँ की भीतरी दीवार पर गोल-गोल घूम रही हो... किसी चीज़ ने नीचे पानी को छुआ...
हुह सस सस...! एक आवाज़ आई और कुछ सपाट सा ऊपर उठा...
कुएं के दूसरी ओर वह काला योगी बैठा था।
अब उसके पास जाने के लिए कोई जगह नहीं थी। उसके सारे रास्ते बंद हो गए थे। वे शांति से उसकी आकृति को देख सकते थे।
उसकी आँखों से काले कपड़े की एक चादर हट गई थी। चादर के नीचे से दो लाल आँखें उस पर टिकी हुई थीं। उन आँखों के नीचे चेहरे की धुंधली रेखाएँ दिखाई दे रही थीं। यह कमज़ोर, नाज़ुक दिखने वाला रूप धोखे से भरा था। उसके हाथों में भयानक शक्तियाँ थीं। वह पत्थरों जैसी भारी वस्तुओं से लेकर अपने मन में मौजूद छवियों जैसी अत्यंत तरल वस्तुओं को भी समान सहजता से संभाल सकती थी।
कंधे पर थैला लटकाए और हाथ में मोमबत्ती लिए भगत कुएँ के चारों ओर घूमकर उसकी ओर बढ़ा। आधी दूरी तय करने के बाद वह रुक गया। उसने अपनी भारी आवाज़ में कहा,
"थेराड्या, तुम क्यों रुक रही हो? चलो!"
भगत ने कुछ नहीं कहा। वह चुपचाप उसे देखता रहा।
"थेराड्या, तुम डर से क्यों जम गई हो? आगे आओ!"
भगत ने स्वयं को सिर हिलाकर सहमति दी, अपने थैले में हाथ डाला और उंगलियों से आपस में गुंथी हुई तीन काली रस्सियों की एक पतली सी श्रृंखला निकाली। श्रृंखला को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने कहा, आपको अपने पापों का पश्चाताप करने और उनका प्रायश्चित करने का अवसर अवश्य दिया जाना चाहिए। यही हमारी पैतृक परंपरा है। यही हमारी धार्मिक परंपरा है। आइए, इसे स्वीकार कीजिए,

इसे अपने गले में पहनिए... अपने पापों को सार्वजनिक रूप से स्वीकार कीजिए, प्रायश्चित कीजिए और पवित्र बनिए। यह मार्ग सबके लिए खुला है। आइए, इस अवसर को न चूकें।
भगत के सरल, विनम्र शब्दों से भी उसे उतना ही दुख हुआ जितना कि असुदा के कठोर शब्दों या डांट से होता। उसका क्रोध बेकाबू था। उसकी उंगलियों से चिंगारियां निकल रही थीं। उसके आसपास का वातावरण हलचल मचा रहा था।
"क्या तुम मुझे माफ़ करोगे, थेराद्या? तुम? तुम पाखंडी, उस गरीब झोपड़ी में बैठे राख चबाते हुए! तुम पाखंडी, उस लाल रंग के कमरे में बैठे धुएँ में चिथड़े, पत्ते और टहनियाँ सूंघते हुए! दरअसल, पचास साल पहले तुम मेरे हाथों में मिले थे - लेकिन जैसे ही तुम पानी में कूदने वाले थे, वही थेराद्या भगत वहाँ गिर पड़ा... ठीक है! तब नहीं, लेकिन अब!"
जैसे ही उसने अपने हाथ ऊपर उठाए, काला कपड़ा पंखों की तरह लहरों में खुल गया। ऐसा लग रहा था मानो वे रात के आकाश के टुकड़े हों; लेकिन उन पर बने तारे विकृत थे...
वह भगत से पाँच कदम दूर रुक गई। पवित्रा छलांग लगाने ही वाली थी। काले पंख धीरे-धीरे हिल रहे थे... वह काली हवा उनके ऊपर से गुज़र रही थी... उस काली हवा में वर्षों, दशकों, शताब्दियों, सहस्राब्दियों और युगों को पार करने की शक्ति थी। हर लहर के साथ, मानव साम्राज्य उठ रहा था। वह धूल में मिल रहा था... वह ब्रह्मांडीय हवा जो संसार को उखाड़ फेंकती है, भगत के ऊपर से गुज़र रही थी और उसमें समाहित होती जा रही थी, समाहित होती जा रही थी और उसके कंधों पर लिपटी शॉल में कोई निशान या छाप छोड़े बिना गायब हो रही थी।
"थेराड्या, मुझे बताओ, तुम कैसे मरना चाहती हो? क्या मैं तुम्हारी नाक और मुंह दबाकर तुम्हारा दम घोंट दूं? क्या मैं तुम्हारे शरीर को आग पर रखकर काली राख में बदल दूं? क्या मैं तुम्हारे शरीर के सारे रस सुखाकर तुम्हें लाश जैसा बना दूं? क्या मैं तुम्हारे पेट में कीड़े छोड़कर तुम्हारे शरीर को अंदर से खा जाऊं? क्या मैं तुम्हारे शरीर पर तेजाब छिड़ककर तुम्हारी त्वचा, मांस, मज्जा और रक्त को पिघला दूं, और सिर्फ कंकाल छोड़ दूं? बताओ! तुम कैसे मरना चाहती हो?"
भगत ने अब अपने कंधों से शॉल खोल दी थी। दोनों हाथों से उसके दोनों सिरे पकड़कर उसने उसे पीछे फैला लिया था। शॉल पर की गई कढ़ाई अपनी ही चमक से दमक रही थी। रेखाएँ बहती हुई प्रतीत हो रही थीं। पहिए घूम रहे थे। भगत का चेहरा कठोर हो गया था। उसे इस बात में कोई संदेह नहीं था कि इसमें उसे शारीरिक रूप से नुकसान पहुँचाने की शक्ति थी।

उन्होंने कहा, "मृत्यु मेरी शत्रु नहीं, मेरी मित्र है। मुझे इससे कभी भय नहीं लगा - हम भक्त कभी मृत्यु का सामना नहीं करते... जब समय आता है, तो हम मुस्कुराते हुए उसका स्वागत करते हैं... आपको यह अनुभव से पता होना चाहिए!"

"हाँ! वह मेरे हाथों से बच निकला! लेकिन तुम नहीं बच पाओगे!"

वह उछल पड़ी। भगतानी ने अपने शरीर पर शॉल लपेट ली। उसकी अधिकांश शक्ति उस शॉल में समा गई। बहुत थोड़ी सी शक्ति भगत के शरीर तक पहुँची... लेकिन वह क्षण असहनीय पीड़ा से भरा था। शरीर जकड़ा हुआ था। शरीर चरखे में मरोड़ा जा रहा था। हजारों धारदार हथियार शरीर में चुभ रहे थे...

फिर लहर उनके ऊपर से गुज़र गई। उन्होंने अपनी आँखें खोलीं।

अंधेरे तहखाने में लाल-पीली रोशनी कैसी थी?

उसने पीछे मुड़कर देखा। उसके शरीर पर लिपटा काला कपड़ा आग की लपटों में घिर गया था। लपटें धड़क रही थीं। उसका भेस भी मायावी था। कपड़े का रूप धारण करने के लिए आंतरिक पदार्थ का उपयोग किया गया था। आग भी एक प्रतीक थी। इसका अर्थ विनाश था।

उसने अपने शरीर का आकार बदल लिया। उसने अपना मानवीय रूप त्याग दिया। वह भले ही चट्टान या लकड़ी के लट्ठे जैसी बन गई हो - लेकिन शॉल के स्पर्श से उसके शरीर में समाया ज़हर अब भी उसे नष्ट कर रहा होगा... बस अब यह अदृश्य स्तर पर हो रहा था।

शरीर को तरोताज़ा करने के लिए उसे कुछ मिनटों के आराम की ज़रूरत थी। तहखाने की जगह इसके लिए उपयुक्त नहीं थी। वह पीछे मुड़े बिना सीढ़ियाँ चढ़ गया, ऊपर के बैठक कक्ष के बीच में बैठ गया और अपनी आँखें बंद करके अपनी सारी शक्ति समेट ली।

परछाई की तरह उनका पीछा करती हुई काली आकृति उनकी समझ से परे थी (शायद यह भी कुछ क्षण पहले लगे सदमे का परिणाम था)। जैसे ही भगत ने अपनी आँखें बंद कीं, काली आकृति उनके चारों ओर कई बार उल्टी होकर चक्कर लगाने लगी। फिर वह आकृति धुएँ की तरह हल्की और पतली होकर हवा में ऊपर उठती चली गई। झोपड़ी के कोने में एक छोटा सा छेद था। उसमें से धुआँ निकला और रात के अँधेरे में गायब हो गया।

भगत को संभलने के लिए वे दस-पंद्रह सेकंड काफी थे। उसने आँखें खोलीं और तुरंत महल में बदलाव महसूस किया। 'वह' महल छोड़कर जा चुकी थी। उसके सारे रास्ते बंद करने के प्रयास आखिरकार विफल हो गए थे। किसी न किसी तरह का गुप्त रास्ता खुला रह गया था।

और यह बिल्कुल स्पष्ट था कि वह कहाँ गई थी।

अच्युत के पास, बिल्कुल! वही अच्युत जिसने भगत को इस मामले में घसीटा था, वही अच्युत जो पालतू कुत्ते की तरह बंधी हुई थी, अपनी गुलामी से मुक्ति की उम्मीद में, उसी अच्युत के पास, बिल्कुल! उसे सबक सिखाने के लिए। उसके गले में फंदा और भी कसने के लिए।

वे वहां जल्द से जल्द पहुंचना चाहते थे।

लेकिन यह एक दूरस्थ स्थान था। अब यहाँ वाहन लाना असंभव था। कम से कम तब तक तो नहीं जब तक पुल का निर्माण नहीं हो जाता। और उन्हें महल की सफाई का काम भी स्थगित करना पड़ेगा।

उन्होंने थैला अपने कंधों पर टांगा, शॉल को मोड़ा और उसे भी अपने कंधों पर डाल लिया। वे बड़े दरवाजे तक पहुंचे।

नीचे रखे धागे पर चमकती नीली-हरी रोशनी गायब हो गई थी। यह इस बात का प्रमाण था कि उनका पिछला अनुमान सही था। बरामदे से वे मंदिर के पीछे वाली सड़क पर आ गए।

दोनों ओर दूर-दूर तक सुनसान सड़क फैली हुई थी। वे तेज़ी से पुल की ओर चलने लगे।

वह इससे भी तेज़ दौड़ सकती थी; लेकिन अपने शरीर की शक्ति को व्यर्थ करना संभव नहीं था; क्योंकि संघर्ष अभी समाप्त नहीं हुआ था। उसकी आखिरी गांठ अभी टूटनी बाकी थी।

□□□

8

गोपाल और अच्युत की रात्रि जागरण ने एक नया रूप ले लिया था। रात बीत जाने और सुबह हो जाने मात्र से उनकी समस्याएँ हल नहीं होने वाली थीं। क्योंकि इस बात की कोई गारंटी नहीं थी कि भगत उनकी मदद के लिए वहाँ मौजूद होगा।

गोपाल ने अच्युत को बिस्तर के पास बिठाया और रसोई में जाकर दो कप कड़क कॉफी बनाई। उस रात दोनों ने एक अजीब अनुभव किया था, उनके शरीर और मन थके हुए थे; लेकिन यही वह समय था जब उन्हें सबसे ज़्यादा सतर्क रहना था।

दोनों कॉफी पीते हुए बातें कर रहे थे। मौजूदा हालात पर उनकी चर्चा दो अज्ञानी लोगों के बीच बहस जैसी थी - लेकिन इसके अलावा, रोजमर्रा के साधारण विषयों पर बात करना नामुमकिन था - क्योंकि पिछली रात से वे अनुभवों की एक बिल्कुल अनोखी और अकल्पनीय दुनिया में प्रवेश कर चुके थे।

एक अगरबत्ती खत्म होने ही वाली थी - गोपाल ने दूसरी जला ली।

दूसरा वाला खत्म हो रहा था - इसलिए उसने तीसरा वाला लगा दिया।

सुबह के तीन बज रहे थे। उसने ज़ोर से जम्हाई ली। जैसे ही तीसरा घंटा बीता और वह उठने लगा, अच्युत ने उससे कहा,

"गोपाल, तुम अभी यहीं रहो - मैं कपड़े बदल लेता हूँ।"

इनमें से कौन सा संयोग सार्थक है? कौन सी घटना प्राकृतिक है?

अच्युत के छोटे से घर के चारों ओर एक अदृश्य तूफान मंडरा रहा था। वह अंदर आने का रास्ता तलाश रहा था, चाहे वह कितना भी सूक्ष्म क्यों न हो। प्रवेश के सभी रास्ते बंद थे। राख की उन लकीरों का स्पर्श आग के जलते हुए, भस्म कर देने वाले स्पर्श जैसा था।

एक खिड़की पर लगे पर्दे पूरी तरह से बंद नहीं थे, उनका एक छोटा सा हिस्सा बाहर निकला हुआ था।

अच्युत एक नई बनी अगरबत्ती को अलमारी में रखने के लिए ऊपर ले जा रहा था।

तेज हवा का झोंका आया।

खिड़की का चौखट गिर गया! वह बाहर की दीवार से ज़ोरदार धमाके के साथ टकराया।

आवाज इतनी तेज और इतनी अप्रत्याशित थी कि अच्युत चौंक गया। अगरबत्ती का जलता हुआ सिरा अलमारी के दरवाजे से टकराया... एक चिंगारी गिरी और अगरबत्ती बुझ गई।

नलिनी की आँखें चौड़ी हो गईं। वे और चौड़ी हो गईं। भीतरी पुतलियाँ हिलने लगीं। और फिर अचानक! वह ज़ोरदार आवाज़ के साथ बिस्तर पर बैठ गई।

"गोपाल!" अच्युत जोर से चिल्लाया.
गोपाल पूरी तरह होश में था। वह अपनी कुर्सी से सीधा खड़ा हो गया। उसने अच्युत का हाथ पकड़ा और उसे कमरे से बाहर खींच ले गया।
“पहले बाहर निकलो! बाहर निकलो!” वह चिल्लाया। घर के बाहर का दरवाजा ताला लगा हुआ था और कुंडी लगी हुई थी। गोपाल को लगा कि उसकी कांपती उंगलियां उसे कभी नहीं ढूंढ पाएंगी। एक छोटी सी बात ने उसे बचा लिया। नलिनी झटपट बिस्तर से नीचे उतर गई। वह एक पतली चादर से ढकी हुई थी। उसके दोनों पैर उस चादर में लिपटे हुए थे, और वह बिस्तर के पास गिर पड़ी। अगर वह चुपचाप अपने पैर खोलती, तो अब तक बिस्तर तक पहुंच चुकी होती – लेकिन – चुप रहना उसके स्वभाव में नहीं था। वह अपने पैरों को जोर-जोर से पटक रही थी, मुंह से चूसने जैसी आवाज निकाल रही थी, और फर्श पर गंदगी फैला रही थी...
आखिरकार, उसने चादर पकड़ी, उसे फाड़कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया, फेंक दिया और जल्दी से खड़ी हो गई - इतनी जल्दी कि वह लगभग फिर से अपना संतुलन खो बैठी। और फिर वह इत्मीनान से उनके पीछे चलने लगी।
गोपाल ने किसी तरह दरवाजा खोला, अच्युत को बाहर धकेला, और जैसे ही वो बाहर कदम रखने वाला था, वो वहाँ पहुँच गई। उसने तो उसे पकड़ने के लिए हाथ भी बढ़ाया था... उसके हाथ के नाखूनों ने उसकी कमीज़ का पिछला हिस्सा फाड़ दिया। ऐसा लगा जैसे कोई जलता हुआ अंगारा उसकी पीठ से गुज़र गया हो। फिर वो बाहर गिर पड़ा।
और वह दरवाजे के अंदर खड़ी थी।
कमरे में कोई दीपक नहीं था। दूर जल रही ट्यूबलाइट की हल्की रोशनी उस तक पहुँच रही थी – और बस, अच्युत, जो उससे दो हाथ की दूरी पर खड़ा था, ने सोचा। उसका आधा-अधूरा दिखना ही काफी डरावना था। अंदर उसकी प्रेमिका नलिनी नहीं थी। उसके शरीर में कुछ और प्रवेश कर गया था... ऐसे शैतानी, राक्षसी, क्रूर भाव उसके चेहरे पर कभी नहीं आते। वह कभी भी वहाँ खड़ी होकर, मुट्ठी भींचकर, दाँत दिखाकर, और गाय की तरह ज़मीन पर पैर पटककर, उस पर हमला करने की कोशिश नहीं करती – इस तरह मदहोशी में...
"अच्युत," गोपाल ने धीरे से कहा, "पीछे हट जाओ और उसकी नज़र के सामने मत खड़े हो। वह गुस्से में कुछ ऐसा कर देगी जिससे नुकसान हो सकता है। अगर उसे चोट लगी भी तो सिर्फ उसकी भाभी के शरीर को ही लगेगी... आओ... इधर आओ।"

जैसे ही वह नजरों से ओझल हुआ, नलिनी गुस्से से भर उठी। वह घर में इधर-उधर नाचने लगी और फिर दरवाजे पर आकर रुक गई।

लगभग एक मीटर चौड़ी राख की मोटी परत ही उसे घर में कैद रखने के लिए बाध्य थी।

अच्युत के लिए वे कुछ पल उसके जीवन के सबसे बुरे क्षण थे। बाहर पहले से ही ठंड थी। वे दोनों जल्दी से सिर्फ बनियान पहने बाहर आए थे। घटना के कारण उनके शरीर पसीने से भीगे हुए थे। ठंड और डर से उनके शरीर कांप रहे थे। अच्युत गैलरी की रेलिंग को अपने हाथों में कसकर पकड़े हुए था, किसी तरह अपने शरीर पर नियंत्रण पाने की कोशिश कर रहा था।

इस शारीरिक पीड़ा के बीच, उसके हृदय में अपराधबोध की एक कसक उठी। उसकी अपनी लापरवाही ही इस घटना का कारण थी। और उसकी बेटी! उसी की वजह से उस बेचारी को एक बार फिर उस भयानक कालकोठरी में धकेल दिया गया था... उसने स्वयं वहाँ की परिस्थितियों का अनुभव किया था... उसका हृदय उसके लिए व्याकुल था...

और सबसे बुरी बात यह थी कि भगत की वापसी की कोई गारंटी नहीं थी। उनका घर उनके लिए बंद था। उनकी प्रिय पत्नी एक अकल्पनीय जानलेवा जाल में फंसी हुई थी और उन्हें इस विकट परिस्थिति से निकलने का कोई रास्ता नजर नहीं आ रहा था।

यह शारीरिक, मानसिक और सांसारिक दुःख, शोक, वियोग और निराशा का सबसे निचला स्तर था।

लेकिन एक कहावत तो है ना?

भोर होने से पहले का समय रात का सबसे अंधेरा समय होता है।

"अच्युत! अच्युत!" गोपाल अपना कंधा जोर-जोर से हिला रहा था।

"अच्युत! उसे देखो!" भगत आ गया है!

उन जादुई शब्दों से अच्युत को होश आ गया।

भगत एक आलीशान कार से उतरे। उन्होंने ड्राइवर से कुछ शब्द कहे, एक हाथ से अलविदा कहा और कार के चले जाने पर पीछे मुड़ गए।

उनकी निगाहें गैलरी की ओर उठीं।

गैलरी में उन दोनों को देखते ही वे वहीं रुक गए।

फिर उसने पहले अपनी उंगली उनके मुंह पर रखी और उन्हें चुप रहने का इशारा किया। फिर उसी हाथ से उसने उन्हें नीचे आने का इशारा किया। दोनों नंगे पैर और आधे-अधूरे कपड़ों में भगत के पास सड़क पर आ गए। उनके पसीने से तर और डरे हुए चेहरों को देखकर भगत ने कहा, “कुछ गड़बड़ हो गई है! क्या हुआ है?”

"भगत! भगत! वो... वो... मेरी नलिनी-" अच्युत की आवाज़ भारी हो गई। उसने अपना सिर नीचे कर लिया।

"गोपाल? तुम बताओ!"

"भगत, हम महल से घर लौटने ही वाले थे। किस्मत से मैं पीछे रह गया, तुम्हारी अस्थियां और अगरबत्तियां मेरे हाथों में थीं। भगत, ये ट्यूब दरवाजे के ठीक अंदर घात लगाए बैठे थे। जैसे ही अच्युत अंदर आया, वे उस पर टूट पड़े - मैं पागलों की तरह उसकी मदद के लिए दौड़ने ही वाला था - लेकिन सही समय पर सतर्क हो गया। अंदर से बहुत ही भयानक, गंदी आवाजें आ रही थीं; लेकिन मैं बाहर ही रुका रहा, एक अगरबत्ती जलाई और फिर अंदर गया। उस पल सब शांत हो गया। मेरी भाभी गिर पड़ी थीं। उनका क्या ही रूप था! छी छी! मैं उन्हें देख भी नहीं सका!"

"लेकिन फिर आप अभी बाहर कैसे हैं? आप कमरे में क्यों नहीं हैं?"

"भगत, भाभी के शरीर में जो भी तकलीफ थी, उसे दूर करने के लिए बाहर कुछ तो था। अच्युत दस-पंद्रह मिनट पहले अगरबत्ती जला रहा था - खिड़की की चौखट पर वही चटकने की आवाज़! एक आवाज़ आई - अगरबत्ती का जलता हुआ सिरा अलमारी से टकराया और हाथ से हल्की सी आवाज़ हुई - अगरबत्ती बुझ गई। उसी क्षण भाभी अचेत अवस्था में उठ बैठीं। मैं दौड़ा और किसी तरह अच्युत को बाहर ले आया। वह लगभग मुझे दरवाजे पर ही पकड़ लेता -"

गोपाल ने भगत की ओर पीठ कर ली। उसकी कमीज का पिछला हिस्सा बुरी तरह फटा हुआ था। उसकी पीठ पर एक लंबा लाल निशान था।

"जब मैं कमरे में दाखिल हुआ, तो घर के सभी दरवाजों और खिड़कियों पर राख की लकीरें जमी हुई थीं। सिर्फ उन्हीं लकीरों की वजह से घर वीरान पड़ा था। वरना - वरना -"

गोपाल के शरीर में अचानक एक कंपकंपी दौड़ गई।

"हाँ," भगत ने आखिरकार कहा। "तो अगर वो वहाँ से भागकर यहाँ आ जाए! ठीक है। तो अब नाटक का आखिरी एक्ट करना है! कोई दिक्कत नहीं। अब तुम ऊपर जाओ। पड़ोसियों के घर बैठो। हमने उन्हें बहुत परेशान किया है। उम्मीद है कि ये आखिरी बार होगा।"

दोनों के चेहरों को देखकर वह हल्का सा मुस्कुराया। उसने अपना हाथ उनके कंधों पर रखा। भगत के हाथों के साधारण स्पर्श से ही आशा, चेतना, आनंद और साहस जागृत हुआ। उस स्पर्श से उसके शरीर की सुन्नता कम हो गई, मन पर छाए अंधकार छंट गए। दुनिया उतनी अंधेरी नहीं थी जितनी दिखाई दे रही थी। आशा की एक सुनहरी किरण दिखाई दी।

उनके कंधों से अपना हाथ हटाने के बाद, भगत ने पीछे मुड़े बिना सीधे सीढ़ियों से ऊपर जाकर, गैलरी से होते हुए अच्युत के घर के दरवाजे तक पहुंचे और दरवाजे के बाहर एक पल भी रुके बिना अंदर चले गए।

उसके भीतर पहले से ही एक जानवर मौजूद था, जो एक जानवर के स्तर पर था, और अब अपने शिकार को अपने जबड़ों से छीन लिए जाने के कारण उत्पन्न क्रोध ने संतुलन की किसी भी बची-खुची भावना को पूरी तरह से नष्ट कर दिया था।

वह अंदर आने वाले व्यक्ति को देखे बिना ही कूद पड़ी।

उसे इतनी ज़ोर से पीछे धकेला गया मानो वह किसी पत्थर के खंभे से टकरा गई हो। दरवाज़े पर, भगत ने हिचकिचाते हुए लाइट स्विच की ओर हाथ बढ़ाया। जैसे ही उसका हाथ स्विच से छूआ, लाइट जल गई। लाइट जली, लेकिन अगले ही पल, एक ज़ोरदार धमाके के साथ, वह फट गई। नीचे कांच बिखरने की आवाज़ आई। कमरा फिर से अंधेरे में डूब गया।

एक गहरी साँस लेते हुए भगत ने एक बार फिर अपने थैले से मोमबत्ती निकाली। उसे हाथ में पकड़े हुए, उन्होंने दूसरे हाथ से माचिस खोली और मोमबत्ती जला ली। अँधेरे में अपने आस-पास मंडरा रही किसी भी चीज़ पर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। जब मोमबत्ती पूरी तरह जल उठी, तो उन्होंने उसकी रोशनी में तीनों कमरों का निरीक्षण किया और बीच वाले कमरे के मध्य में खाली जगह चुनी। उन्होंने मोमबत्ती को वहाँ ज़मीन पर रख दिया। कमरे में एक हल्की हवा बह आई। कमरे में रखे कपड़े, पर्दे और कैलेंडर उस हवा में लहरा रहे थे, हवा में उड़ रहे थे; लेकिन मोमबत्ती की लौ धीरे-धीरे जल रही थी। वह हल्की हवा उस धीमी सुनहरी लौ को छू भी नहीं पा रही थी।

भगत बैठ गए। उन्होंने अपने सामने अपनी अस्थियों का एक सजीला रूप प्रस्तुत किया। यह उनके लाल कमरे के मखमली पर्दों पर बनी आकृति से बहुत मिलता-जुलता था। फिर उन्होंने उस घेरे में अपना आसन लगाया। घेरे में प्रवेश करने की एक विशेष रस्म भी थी - पदन्यास। यदि कोई ऐसा कैमरा लगा होता जो एक सेकंड के हज़ारवें हिस्से में कई तस्वीरें खींच सकता, तो फिल्म में यह दिखाई देता कि उनकी आकृति बीच में थोड़ी धुंधली हो जाती और फिर स्पष्ट हो जाती। जो लोग इसके बारे में उत्सुक हैं, उनके लिए बता दें कि वे अस्तित्व के एक अलग ही स्तर में प्रवेश कर चुके थे। कांच पर स्याही के धब्बे कांच के नीचे की तस्वीर को नहीं मिटते, तेजाब नहीं जलता, (यदि कांच मजबूत हो) तो घाव में दर्द नहीं होता... खैर, व्याख्याएँ सीमित ही रह जाती हैं।

जैसे ही वे लोग एक घेरे में बैठकर बैठक करने लगे, वह कमरे में आ गई। वह अखाड़े के बाहर किसी जानवर की तरह हाथों और घुटनों के बल बैठी थी। वह अपना मुँह चौड़ा खोलकर उन्हें दिखा रही

थी। उसके दाँत बाहर निकले हुए थे। भगत ने दोनों हाथों से एक जटिल इशारा किया। जैसे किसी ध्वनि को लंबी दूरी तय करने में समय लगता है, वैसे ही उस इशारे का असर उस तक पहुँचने में कुछ सेकंड लगे। वह ऐसे उछल पड़ी जैसे उसे किसी कीड़े ने काट लिया हो... उसने भगत को अपने हाथ से ज़ोर से मारा।

देखने वाले को लगा होगा कि कुछ कमी रह गई है। उसका हाथ भगत के बैठने की जगह से गुजरा; लेकिन भगत ने उस हाथ को छुआ तक नहीं। ऐसा लगा मानो वार किसी दर्पण में दिख रहे प्रतिबिंब पर हुआ हो। भगत बिना पलक झपकाए चुपचाप बैठे रहे।

लेकिन उसका संतुलन बिगड़ गया। उसका एक पैर राख की रेखा पर पड़ा, लेकिन -

वह अचानक पीछे हट गई, अजीबोगरीब आवाजें निकालती हुई, कराहती हुई और अपने हाथ-पैर पटकती हुई... वह कमरे में बेतहाशा नाचने लगी...

भगत ने यही क्षण चुना।

भगत ने अपने सामने मौजूद संरचना में बहुत छोटा सा बदलाव किया।

उन्होंने अपने क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए एक बहुत ही संकरा रास्ता बनाया था। रास्ता न केवल खुला था, बल्कि उस दिशा में एक विशेष ढलान भी बनाई गई थी। जैसे कागज के टुकड़े का आकार बदला जा सकता है और उस पर पारे की गेंद को इच्छानुसार कहीं भी ले जाया जा सकता है, वैसे ही उन्होंने एक ढलान के लिए रास्ता बनाया था।

उस स्थान पर घटी घटनाओं का असर यहाँ महसूस होने में कुछ समय लगा; लेकिन कुछ समय बाद, प्रभाव दिखने लगे। जब संग्रहित जल को पाइप की तरह नीचे बहने दिया गया, तो धीरे-धीरे एक सर्पिलाकार आकृति बन गई - कमरे में भी वैसी ही सर्पिलाकार 'प्रवाह' उत्पन्न हो गई... और वह आकर्षण नलिनी (जिसके शरीर के भीतर हलचल हो रही थी) को भी प्रभावित करने लगा, जो कराह रही थी, नाच रही थी और दीवार पर मुट्ठियाँ पटक रही थी।

शायद उसने इसे महसूस किया होगा। राख के स्पर्श का दर्द अब भी उसके मन में था। वह कमरे के एक कोने में बैठी काफी देर तक सिसक रही थी; लेकिन भक्तों द्वारा उत्पन्न आकर्षण उसे अपनी ओर खींच रहा था। वह पैर जमाकर, खिड़की की चौखट पकड़कर इसका विरोध कर रही थी... लेकिन कुछ भी काम नहीं आ रहा था... वह खिंचाव विरोध नहीं कर रहा था, बल्कि अटल था... वह धीरे-धीरे भक्तों के घेरे की ओर खिंची चली जा रही थी।

जब वह घेरे की सीमा तक पहुँची, तो फूट-फूटकर रोने लगी। "नहीं! नहीं!" वह रोते हुए कह रही थी... लेकिन जैसे बाढ़ के पानी में बहता हुआ तिनका, वह घेरे के किनारे से मध्य भाग से होते हुए भक्तों की भीड़ में गिर पड़ी...

उस स्थान की विशेषताएं अलग थीं, नियम अलग थे। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि वह नलिनी के उस अलौकिक शरीर का उपयोग वहां (अपनी सुरक्षा के लिए, ढाल के रूप में) नहीं कर सकती थी। उसे वह शरीर छोड़ना पड़ा। नलिनी एक तरफ करवट लेकर लेटी थी, मानो वह कोमा में चली गई हो।

बाहर से देखने पर किसी को वह जगह पाँच या छह वर्ग फुट की लगती, लेकिन यह भ्रम था। अंदर का विस्तार विशाल था। इसमें एक अंतर्निहित संदेश है कि पदार्थ स्वयं अंतरिक्ष का एक बहुत ही सघन रूप है। शायद इस भिन्न आयाम में, पदार्थ के कुछ भाग अंतरिक्ष में परिवर्तित हो रहे थे... जो भी हो, वहाँ अंतरिक्ष की कोई सीमा नहीं थी।

यदि मनुष्य वहां तक पहुंच पाता, तो वह अपने मन और शरीर में निहित सभी संभावनाओं को साकार कर पाता - लेकिन मनुष्य की प्रगति आधे रास्ते में ही रुक गई... पांचों इंद्रियों के आकर्षण के जाल से होकर बहुत कम लोग ही वहां तक पहुंच सके... लेकिन वहां, उनकी इच्छाएं, विचार और शब्द एक तेज हथियार की तरह धारदार थे...

संघर्ष के लिए भगत ने इस स्थान का चयन किया था।

भगत एक खूबसूरत बगीचे में, सुगंधित फूलों से लदे एक पेड़ की ठंडी छांव में बैठा था। उसके पैरों के नीचे मखमली मुलायम हरियाली थी। हल्की हवा उसके शरीर को छू रही थी। पक्षियों की मधुर आवाज़ें सुनाई दे रही थीं।

अचानक पक्षियों का चहचहाना बंद हो गया। हवा की ठंडक गायब हो गई। गर्म हवा का एक बवंडर आया। ऐसी गर्म हवा जो शरीर को झुलसा रही थी। पैरों के नीचे की घास सूखकर पीली पड़ गई। पेड़ों के पत्ते पीले पड़ गए और गर्म हवा में उड़ गए... बेजान पक्षी नीचे गिर रहे थे... एक गिद्ध पत्तों से रहित पेड़ की मोटी शाखा पर बैठा था। मरे हुए पक्षियों की त्वचा उतर रही थी और अंदर से सफेद लार्वा रेंग रहे थे।

ये उसके आगमन के संकेत थे।

वह आई। वह काले रंग की योगिनी के रूप में भेस बदलकर आई।

यह मृत, सड़ी-गली, दुर्गंधित दुनिया उसके अपने मन का प्रतिबिंब थी। उसकी दुनिया एक चकनाचूर सपना थी; जीवन के छल से भरी दुनिया; उन लोगों की चीखों की दुनिया जिन्होंने एक मायावी

आकर्षण की खोज में सब कुछ खो दिया था; नेक, आशावान और उत्साही लोगों का वहाँ कोई प्रवेश नहीं था। यह निराशा, पीड़ा और दर्द से भरी एक अंधकारमय, उदास दुनिया थी। ईश्वर के मार्ग को त्यागने वाले लोग वहीं अपने अंत को प्राप्त कर रहे थे।

□□□

फिर अंततः उनका आमना-सामना हुआ। एक बार भगत ने उसे पश्चाताप करने और प्रायश्चित के बाद धर्म के मार्ग पर लौटने का मौका दिया था - लेकिन उसने इनकार कर दिया था।

तब लड़ने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचा था।

उनके जीवन में और उनके पूर्ववर्तियों के जीवन में भी ऐसे कई संघर्ष पहले ही हो चुके थे। अब, इस विशेष स्थान पर, उन्हें अपने पूर्ववर्तियों के सभी ज्ञान और अनुभव तक पहुंच प्राप्त थी।

मनुष्य अपना छोटा जीवन संतोष और गर्व के साथ जीते हैं। वे अपनी उपलब्धियों पर बहुत गर्व करते हैं।

उसे इस बात का जरा भी अंदाजा नहीं है कि कई दुष्ट, अमानवीय ताकतें लगातार उसकी छोटी सी दुनिया को चकनाचूर करने और उसके अनमोल दिमाग को गुलाम बनाने का प्रयास कर रही हैं।

और अगर भगत जैसे कुछ समझदार लोगों ने इस नाजुक, क्षणभंगुर मानव जगत के चारों ओर सुरक्षा की श्रृंखला को बरकरार न रखा होता, तो मानव सभ्यता बहुत पहले ही बर्बर अनैतिकता में डूब गई होती... भगत भी इस सुरक्षा श्रृंखला में एक अग्रदूत थे।

उनमें से एक का पहले भी इस काली आत्मा से सामना हो चुका था और उसे पीछे हटना पड़ा था। इस पुरानी याद ने पहले से ही धारदार हथियार को और भी अधिक गर्म कर दिया था।

यह प्रहार अचानक हुआ। एक विशाल चट्टान उस बिजली की कड़क से चकनाचूर हो जाती। बेशक, वह आसानी से उनके ऊपर से लुढ़क गई; लेकिन यह अजीब था कि उसने इतना ऊबड़-खाबड़ रास्ता क्यों चुना - तो यह महज़ एक चाल रही होगी... असली हमला तो किसी और दिशा से आने वाला था... उसी क्षण, उनके आसपास की ज़मीन ऐसे फट उठी मानो अंदर से फट गई हो...

धरती की कोख से अनगिनत विषैले कीड़े लहरों की तरह निकले... चींटी जैसी कठोरता, बिच्छू जैसा डंक और सांप जैसी फुर्ती... उसकी विकृत कल्पना से पैदा हुए इन अप्राकृतिक कीड़ों में ये सभी गुण समाहित थे... उनके शरीर पर कठोर, चमकदार काले खोल थे... उनकी बड़ी-बड़ी आंखें थीं जिनमें अलग-अलग आकार के लेंस लगे थे... फिर विषैली सूंडें थीं... वे लाखों की संख्या में आए... वे भगत के शरीर पर लिपटी शॉल में उलझ गए...

आस-पास का नज़ारा बदल रहा था। इलाका एक जानी-पहचानी आकृति धारण कर रहा था। वह खंडहर मंदिर। उसके पीछे जर्जर महल। वह बरामदा... वह उस जगह पर अपनी छाप छोड़ने की कोशिश कर रही थी जिसे उन्होंने बनाया था। भगत चुपचाप अपने मौके का इंतज़ार कर रहा था। बरामदा, दीवारें, ऊपरी मंज़िल पल-पल सघनता, स्थिरता और वास्तविकता प्राप्त कर रही थीं। महल

लगभग पूरा हो चुका था - और उसी क्षण, आकाश से बिजली गिरी और ज़ोरदार धमाका हुआ! सिर्फ़ एक नहीं। चकाचौंध भरी नीली-सफेद, टिमटिमाती, जलती हुई लकीरों की चकाचौंध में, जिसने आँखों को चकाचौंध कर दिया, महल फट गया, ढह गया, उसकी दीवारें चकनाचूर हो गईं... लोहा पिघल गया, लकड़ी जलकर राख हो गई... बस उठता हुआ धुआँ ही बचा रहा...

लेकिन भगत थोड़ा कमजोर महसूस कर रहा था। रात के शुरुआती घंटों में झड़प हुई थी। उसके बाद, अब लड़ाई का समय था। वह संघर्ष को लंबा नहीं खींचना चाहता था। वह एक ही वार में निर्णायक प्रहार करना चाहता था।

बस कुछ समय चाहिए था। इसके लिए एक प्रक्रिया थी। वह इसका उपयोग केवल एक बार कर सकता था। वह प्रक्रिया कई लोगों द्वारा कई तरीकों से सिद्ध हो चुकी थी। भगत ने अपनी बैठने की मुद्रा बदली। उनका पूरा शरीर अंतर्मुखी हो गया। उन्होंने कम से कम अपनी पीठ बाहरी दुनिया के लिए खुली रखी। और फिर, अपनी पूरी ताकत से, उन्होंने वह शक्तिशाली शब्द कहा...

उनके शरीरों से उत्पन्न स्थैतिक विद्युत की तरंग पूरे अंतरिक्ष में फैल गई। ध्वनि, गति सब रुक गई। इतना ही नहीं, समय का वास्तविक प्रवाह भी थम गया। जब तक स्थैतिक विद्युत की तरंग अंतरिक्ष की सीमा तक नहीं पहुंची और उसके कण नीचे नहीं गिरे, तब तक पूर्ण शांति छाई रही... तब तक उनके पास समय था...

भगत ने उस पदका वड़ा को अपनी आँखों के सामने लाया। वह शक्ति उस काली योगिनी के रूप में क्यों विचरण करती है? उसने अन्य सभी झूठे रूप धारण किए थे; लेकिन उसने यह रूप नहीं धारण किया था या वह इसे धारण नहीं कर सकी। क्यों? शायद उसका निवास स्थान कहीं वहीं है।

उसने महल का निरीक्षण किया था। उसने सब कुछ अपनी स्मृति में संजो लिया था। अब वह धीरे-धीरे और सावधानी से बरामदे, कमरों, तहखाने, कुएँ, सब कुछ अपनी आँखों के सामने देख रहा था। उसकी निगाह तहखाने के एक कोने से भटक गई थी, फिर वहीं लौट आई। उसे एहसास हुआ कि उस काले, लहरदार फर्श के नीचे कुछ तो है।

उसकी तीखी निगाहों के नीचे ठोस पत्थर पारदर्शी हो गया। उस भारी पत्थर के नीचे एक कंकाल था। कंकाल के चारों ओर फटे-पुराने कपड़ों के अवशेष बिखरे थे। उसकी निगाहों के प्रभाव से कंकाल मांस से ढक गया - मांस - हड्डी - त्वचा... यह एक खूबसूरत, युवती का शरीर था जिसकी हत्या कर वहाँ दफना दी गई थी... एक सर्चलाइट की तरह, उसके विचारों का केंद्र उस शव के सिर पर टिक गया... उस मृत मस्तिष्क में तस्वीरें थीं...

महल के धनी स्वामी ने मंदिर के मठाधीश को रिश्वत देकर खरीद लिया था। शाम को उसने मठाधीश की सेवा में आई युवती का अपहरण कर लिया... वह उसके रंगमंच में उसकी राक्षसी इच्छाओं का शिकार हो गई... उसका क्रोध, विरोध, घृणा और तिरस्कार असहनीय हो गया और अंततः उसने उसकी जान ले ली... उसने अपने इस घिनौने कृत्य के सबूत तहखाने में दफना दिए; लेकिन उसकी आत्मा, अतृप्त प्रतिशोध की लालसा में, उसे चैन से नहीं बैठने दिया। मिट्टी में दफन होने से गंदे काले कपड़ों से ढकी, आँखों में प्रतिशोध की लाल धधकती लौ लिए, उसका शरीर पहले तहखाने में, फिर पूरे महल में घूमने लगा। उसने पूरे महल को तहस-नहस कर दिया। नौकर भाग गए। परिवार के सदस्यों ने उससे मुंह मोड़ लिया। पूरा घर उथल-पुथल में था।

यह यातना क्षणिक वासना के कारण दी गई थी। गुरु स्वभाव से नीच या क्रूर नहीं थे। उन्हें अपने कर्मों का पश्चाताप था। सांसारिक दृष्टि से उन्होंने प्रायश्चित स्वीकार किया था - परन्तु सच्चा पश्चाताप उनके हृदय में था। उस सच्चे, ईमानदार पश्चाताप ने योगी को शांत कर दिया था।

वह योगी शांत हो गया था!

भगत को वह मिल गया था जो वह चाहता था।

संसार के बंधन टूट गए थे। समय का रुका हुआ पहिया फिर से घूमने लगा। वह अनमोल हथियार जिसकी उसे चाह थी, भगत के हाथों में था। अब वह अपनी कुर्सी छोड़कर सीधा खड़ा हो गया। जो इतने लंबे समय से दूर थी, अब उसके सामने खड़ी थी। एक हाथ उठाकर भगत ने कहा,

"यह आपका आखिरी मौका है। अभी, इसी क्षण, अपने शरीर को छोड़ दें। यही एकमात्र चीज है जो आपको बचा सकती है।"

उनकी कल्पना सच हो गई। वह मूर्ख जानवर अपने अहंकार में डूबा रहा। उसने हमला करने के लिए अपने पंजे भी उठा लिए।

"रुको!" भगत चिल्लाया। उसने अपने थैले से धागे का गोला निकाला। उसी धागे से उसने घिसी-पिटी मिट्टी के धब्बों से सने काले कपड़े में शव को लपेट दिया। भगत की आवाज़ में एक अजीब अधिकार और आदेश था।

"इस शरीर का उपयोग करके तुमने अपनी सीमाएँ पार कर ली हैं। तुमने हमारी सीमाओं का अतिक्रमण किया है। तुम्हें इस शरीर का उपयोग करने का कोई अधिकार नहीं था। उस जोगिनी ने उसे प्रताड़ित करने वाले को क्षमा कर दिया था। उसके शरीर को उस महल के तहखाने में दफनाया जाना चाहिए था। तुमने बिना अनुमति के इसका उपयोग किया है। तुमने उस शरीर का अपमान किया है। अब मैंने उस शरीर पर अधिकार कर लिया है। मैंने तुम्हें इसे सौंपने की चेतावनी दी थी -

तुमने नहीं सुनी - अब उस शरीर के साथ तुम भी मेरे अधिकार में आ गए हो... इस क्षण से, मैं तुम्हें उस शरीर के एक कण का भी उपयोग करने से मना करता हूँ..."

उस शरीर में रहने वाला क्रूर और निर्दयी प्राणी अवश्य क्रोधित रहा होगा - लेकिन अब वह उस शरीर का उपयोग अपने क्रोध या किसी भी भावना को व्यक्त करने के लिए नहीं कर सकता था। उसने उस शरीर पर अपना नियंत्रण खो दिया था। वह शरीर अब भक्तों के नियंत्रण में था। और वह भली-भांति जानता था कि इस कैद का अंत क्या होगा।

काले रंग का योगी उसी स्थिर मुद्रा में खड़ा रहा।

भगत ने अपने थैले से नीले रंग के मोटे कांच की एक छोटी बोतल निकाली। उसी रंग के कांच के ढक्कन में एक छेद था, इसलिए उसने उसे खोल लिया। उसने बोतल को योगिनी के मुख के पास रखा। फिर उसने कुछ विशेष शब्द बोलने शुरू किए।

एक बार... दो बार... तीन बार...

योगी के शरीर में रहने वाला अब असहाय हो गया था। उस शरीर का उसे कोई सहारा नहीं था। ऊपर से आ रही पुकार का विरोध करना असंभव था। अंततः, उसे वह पुकार स्वीकार करनी ही पड़ी।

अचानक, योगिनी के खुले मुंह से एक धधकती लाल चिंगारी बोतल में गिरी। भगत ने बोतल वापस ली, उसे बंद किया और अपने बैग में रख लिया।

वह लाल चिंगारी उस विशेष स्थान में भगत का संकुचित रूप थी। अपने स्थान में, वह आकाश को आग की तरह भर देता—सब कुछ भस्म कर देता—पर यहाँ नहीं। वह अपनी मूर्खता के कारण इस पिंजरे में फँसा हुआ था। आख़िरकार, वह भी उस आदिम शक्ति का अंश था, अविनाशी; परन्तु इस स्थान के बंधन को तोड़ना उसके बस में नहीं था। यह स्थान उसे एक विशाल नीले गुंबद जैसा प्रतीत होता था। उसे अपने लिए कुछ भी सुविधाजनक रचने की स्वतंत्रता भी नहीं थी। अन्यथा, वह अपने लंबे जीवन में कुछ रोचक, क्षणिक संतुष्टि देने वाले दृश्य रच लेता—उस भयानक नाटक में, क्रोध, लोभ, घृणा, प्रेम, ईर्ष्या, भय, तिरस्कार, घृणा आदि जैसी भावनाओं का आविष्कार करने वाले नश्वर प्राणी उन दृश्यों को बार-बार देखते—इस क्षणिक मनोरंजन के लिए! परन्तु अब यह संभव नहीं था... अब उसे बस समय के साथ आगे बढ़ते रहना था।

और किसी को (थोड़ी सी) उम्मीद थी।

मैं उम्मीद करता रहा कि किसी दिन, किसी दुर्भाग्यपूर्ण संयोग से, भगत के बेहद निजी संग्रह की यह बोतल चोरी हो जाएगी या किसी प्राकृतिक दुर्घटना के माध्यम से सामने आ जाएगी... और कोई मूर्ख, लालची व्यक्ति धन की लालसा में बोतल का ढक्कन खोल देगा...
फिर उनके दिन! फिर उनकी शक्ति! फिर उनके खेल!
लेकिन तब तक... तब तक हमें बस इंतजार करना होगा।
उसने धीरे-धीरे अपनी इंद्रियों को ग्रहण किया। पदार्थ कठोर हो गया। अब उसका आकार माणिक्य जैसे लाल क्रिस्टल जैसा था। चिंगारी बुझ चुकी थी।
माणिक्य बोतल के तल में गिर गया था।
भगत भी अब अपनी शक्ति की सीमा तक पहुँच चुके थे; लेकिन अभी एक और महत्वपूर्ण कार्य शेष था। और इसे भी उतने ही उचित अनुपात में करना था। उन्हें अपने चारों ओर निर्मित उस विशेष स्थान को ध्वस्त करना था। यह विशाल स्थान रोजमर्रा की दुनिया के छह-सात फीट के वृत्ताकार स्थान से इतना अलग नहीं रह गया था कि उसे पहचानना मुश्किल हो गया था। यदि इसे अचानक नष्ट कर दिया जाता, तो प्रतिगामी विस्फोट (उल्टा विस्फोट) की संभावना थी। इसका प्रभाव आसपास के क्षेत्र में भूकंप की तरह महसूस होता।
जैसे किसी ऊँची इमारत की कड़ियाँ एक निश्चित क्रम से हटाई जाती हैं, वैसे ही भगत ने उस स्थान का तनाव एक निश्चित क्रम से दूर किया... वह स्वतः ही ढह गया और नष्ट हो गया। उसी क्षण, वहाँ पड़ी हुई अपमानित, उपेक्षित, मृत योगिनी का शरीर भी गायब हो गया। भगत मन ही मन प्रार्थना कर रहे थे, "अब उसे सच्ची शांति प्राप्त हो।"
अब वे कमरे में स्वतंत्र रूप से घूम सकते थे।
नलिनी भी उसी असमंजस की स्थिति में लेटी हुई थी।
भगत ने अपने पास मौजूद एक छोटी सी सोने की गोली नलिनी के होठों पर रख दी। पल भर में नलिनी की आंखें खुल गईं।
"नलिनी, मेरा बस एक ही सवाल है, तुम इसमें कैसे शामिल हो गईं?"
"गोपाल भाऊजी के आने से पहले, जब हम दोनों घर में अकेले थे, मैं उन्हें पुकारती रही - अच्युत! उठो! मैं नलिनी हूँ! इसी बीच उनकी आँखें खुल गईं। उनकी लाल जलती हुई निगाहें मुझ पर पड़ीं। मुझे ऐसा लगा जैसे कोई भट्टी खुल गई हो... मुझे लगता है मैं एक-दो पल के लिए बेहोश हो गई थी..."
"यही वह क्षण है। अब सारा खतरा टल गया है। अब आप चैन से सोएंगे। अच्युत को मुंबई से यहां लाए जाने से लेकर गोपाल के आपके घर प्रकट होने तक की सारी घटनाएं आप भूल जाएंगे। पिछले

चौबीस घंटों में आपके साथ हुए सभी चमत्कारिक अनुभव भी आप भूल जाएंगे। आपको वे कभी याद नहीं रहेंगे। अब आइए - आप सो जाइए।"

उन्होंने उसे सहारा दिया, उठाया, चारपाई तक लाए और उसे चारपाई पर लिटा दिया। उसकी आँखों का डर धीरे-धीरे गायब हो गया।

भगत ने अपना हाथ उसके माथे पर रखा।

देखते-देखते उसका चेहरा नरम पड़ गया। वह गहरी नींद में सो गई।

□□□

10

जब भगत अच्युत के दरवाजे पर पहुँचे, तो सुबह की रोशनी आसमान से चारों ओर फैल रही थी। जैसे ही वे आँगन में पहुँचे, अच्युत और गोपाल पड़ोस के घर से जल्दी से उनके पास आ गए। ऐसा लग रहा था कि वे उस रात एक पल भी नहीं सोए थे। उनके चेहरे भय और चिंता से भरे हुए थे। इससे पहले कि वे कुछ कह पाते, उन्होंने दोनों के कंधों पर हाथ रखा और कहा,

"अच्युत, गोपाल, मैंने यहाँ की सारी परेशानियाँ और अच्युत की सारी परेशानियाँ पूरी तरह से दूर कर दी हैं। अब मैं तुममें से किसी को भी परेशान नहीं करूँगा। गोपाल, तुम उन परंद्यों के पास जाओ और उनसे मिलो - वे भी अब पूरी तरह से ठीक हो गए होंगे।"

"लेकिन भगत -" गोपाल कुछ पूछने ही वाला था।

"रुको," उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा, "अभी स्पष्टीकरण देने का समय नहीं है। पहले तुम अंदर जाओ। नलिनी गहरी नींद में सो रही है। उसे आज पूरे दिन सोने दो। शाम को जब वह उठेगी, तो वह बिल्कुल ठीक हो जाएगी। फिर एक-दो दिन में, तुम तीनों मठ में आना। वहाँ मैं तुम्हें सब कुछ विस्तार से बताऊँगा। तुम्हारे मन में जो भी शंकाएँ हों, मैं उन्हें दूर कर दूँगा। जाते समय एक बात याद रखना - नलिनी ने बहुत भयानक अनुभव सहा है। मैंने उसे उन सभी घटनाओं की पूरी तरह से भूलने की शक्ति दे दी है। उससे कुछ मत पूछना। उसे कुछ भी याद नहीं रहेगा। अगर वह तुम्हारे साथ मेरे पास आती है, तो मैं उसे सब कुछ अपने तरीके से बता दूँगा। अब जाओ - और सुखी जीवन जियो।"

वे दोनों इस बारे में क्या कहेंगे? जब भगत जाने के लिए मुड़ा, तो वे दोनों उसके पीछे-पीछे चले गए। सीढ़ियों से उतरते ही गोपाल ने कहा,

"भगत, रुको - मैं टैक्सी बुलाता हूँ -"

"नहीं।"

उन दोनों ने हाथ जोड़कर उनका अभिवादन किया। और फिर वे वहीं खड़े होकर भगत की दुबली-पतली, थोड़ी झुकी हुई और फुर्ती से चलती हुई आकृति को देखते रह गए।

□□□

11

भगत सूर्योदय के समय मठ पहुँचे। उन्होंने अपने थैले से नीली बोतल निकाली। स्नान करने के बाद भी उन्होंने उसे अपनी नज़रों से ओझल नहीं होने दिया। फिर वे गीले कपड़ों में अपने विशेष कमरे में आए और बोतल को कमरे के निचले हिस्से में बनी एक छोटी सी अलमारी में रख दिया, और तभी उन्हें राहत मिली। (उस कमरे में ऐसी कई और बोतलें थीं।)

फिर वे सोफे पर अपनी सामान्य जगह पर बैठ गए।

उसने अपने सामने की संरचना को टकटकी लगाकर देखा, और तभी उसने अपनी इच्छाशक्ति से उत्पन्न उत्तेजना को धीरे-धीरे शांत होने दिया। उसने अपने शरीर और मन से अनुचित अपेक्षाएँ रखी थीं।

अगर उन्होंने अपने शरीर और मन पर नियंत्रण पहले ही खो दिया होता, तो वे कहीं गिर पड़ते और किसी लकवाग्रस्त व्यक्ति की तरह अपने हाथ-पैर पटकते फिरते। आख़िरकार, मानव शरीर और मन की क्षमता की भी एक सीमा होती है (चाहे वे कितने भी अच्छे ढंग से निर्मित हों)!

अब वे सहज महसूस कर रहे थे, सही जगह पर थे।

उसने अपनी आंखें बंद कर लीं, जिससे वह बाहरी दुनिया के प्रति पूरी तरह से सचेत हो गया।

उसका शरीर विकृत अवस्था में कोच पर गिर पड़ा।

लेकिन सामने वाले पर्दे के पीछे एक उभार था।

ऐसा लग रहा था मानो पर्दे के पीछे कोई खड़ा हो। और जैसे ही पर्दे के पीछे खड़ा व्यक्ति कमरे में इधर-उधर चलने लगा, पर्दे के पीछे उभरा हुआ हिस्सा भी कमरे में इधर-उधर हिलने लगा और दीवार से चिपक गया।

सन्नाटे में परदे की चरमराहट की आवाज़ कितनी तेज़ थी! परदा धीरे-धीरे हट गया। सफेद वस्त्रों में लिपटी एक पतली सी आकृति पर्दे के पीछे से निकली।

उस आकृति ने अपना बेहद पतला, लगभग पारदर्शी हाथ भगत के सिर पर कुछ सेकंड के लिए टिका दिया, जो कुछ ही सेकंड के लिए बेजान पड़ा था।

और फिर, जितनी जल्दी वह आकृति प्रकट हुई थी, उतनी ही जल्दी वह पर्दे के पीछे गायब हो गई।

पर्दे के पीछे का उत्साह धीरे-धीरे फीका पड़ गया।

जो घड़ी इतने लंबे समय से रुकी हुई थी, अब फिर से चलने लगी।

भगत ने अपनी आंखें खोलीं।

कमरे में बहुत हल्की सी खुशबू थी।

उनकी सारी थकान पूरी तरह से दूर हो गई थी।
मेरे शरीर और मन में पहले जैसा ही उत्साह और उमंग थी।
भगत ने उस कमरे का दरवाजा अपने पीछे बंद कर लिया और बाहर बैठक में आ गया।
सूर्य की तिरछी सुनहरी किरणें कमरे में प्रवेश कर चुकी थीं। पूरा कमरा एक सुखद प्रकाश से जगमगा रहा था।
आगे और भी संघर्ष और संकट आने तय थे। इस बात की कोई गारंटी नहीं थी कि वे हर बार इतने भाग्यशाली होंगे।
लेकिन ये सब तो भविष्य की बात थी। वर्तमान, ये आनंदमय, सुगंधित, सुनहरे पल का भरपूर आनंद लेना था। उसने ईश्वर को इस सुखमय उपहार के लिए हार्दिक धन्यवाद दिया।

□□□

***** समाप्त *****

sjeet